

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182405

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H.82.01 Accession No. H.2879

Author B. H. J.

Title ఆంధ్ర, తీర్థంబులు
ఆంధ్ర తీర్థంబులు

This book should be returned on or before the date last marked below.

जयशंकर प्रसाद और अज्ञात शत्रु

लेखक—

श्री तारकनाथ बाली एम० ए०

आगरा कालिज, आगरा ।

विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक—

विनोद पुस्तक मन्दिर,

हॉस्पिटल रोड, आगरा ।

[सर्वाधिकार सुरक्षित है]

प्रथम संस्करण—१९५५

मूल्य २)

विषय-सूची

१—अजातशत्रु की कथा	१-१७
२—चरित्र-चित्रण	१९-५६
पुरुष पात्र—	
१—अजातशत्रु ,	२१
२—गौतम बुद्ध	२७
३—बिम्बसार,	३२
४—प्रसेनजित	३७
५—देवदत्त ,	३८
६—विरुद्धक	४०
नारी पात्र—	
१—वासवी	४४
२—छलना ,	४७
३—मागन्धी	५०
४—मल्लिका ,	५४
३—प्रसाद की भाषा	५७-६४
४—प्रसाद की नाट्यकला का स्वरूप	६५-७०
संस्कृत नाट्यकला का स्वरूप	६५
पाश्चात्य नाट्यकला का स्वरूप	६६
प्रसाद का मत	६७
अजातशत्रु की नाट्यकला	६८
५—नाट्यसाहित्य में प्रसाद का स्थान	७१-७४
६—अतीत चिन्तन और वर्तमान चेतना	७५-८६

१—नारी समस्या	७८
२—युद्धों की समस्या	८२
३—बुरे सन्यासी	८३
४—पूर्ण मनुष्यत्व का आदर्श	८३
५—न्याय-व्यवस्था	८४
६—पिता और पुत्र का संघर्ष	८४
७—राष्ट्रीय आन्दोलन-बुद्ध और गाँधी	८५

७—प्रसाद की नाट्यकला की सामान्य विशेषताएँ ८७-१०८

१—नाटकीयता	८७
२—नियतिवाद	९०
३—गीतों का प्रयोग	९१
४—प्रकृति-चित्रण	९३
५—इतिहास और कल्पना	९४
६—यथार्थ और आदर्श	९५
७—रस का प्रयोग	९८
८—अन्तर्द्वन्द्व	१०१
९—प्रेम-चित्रण	१०३
१०—नाटक की समस्या	१०४

८—व्याख्या

१०९-१६८



‘अजातशत्रु’ की कथा

अजातशत्रु की कथा के केन्द्र चार हैं। प्रथम मगध, द्वितीय कौशाम्बी तीसरा कौशल और चौथा काशी। बिम्बसार मगध का सम्राट है। उसकी दो रानियाँ हैं वासवी और छलना। छलना छोटी होने पर भी राजमाता है। क्योंकि वह युवराज अजातशत्रु की माँ है।

छलना उग्र स्वभाव की है और जैन मत से प्रभावित है। उसका वासवी के साथ तथा अपने पति बिम्बसार के साथ संघर्ष चलता है क्योंकि वह अपने पुत्र अजात को मगध का ही नहीं सारे भारतवर्ष का सम्राट देखना चाहती है। अजात पिता को सिंहासन से हटाकर स्वयं मगध का राजा बनता है। वासवी की एक पुत्री है जिसका नाम पद्मावती है। पद्मावती की छलना और अजात के साथ नहीं बनती। पद्मावती का विवाह कौशाम्बी के राजा उदयन से हुआ है। उदयन की दो अन्य रानियाँ भी हैं। वासवदत्ता सबसे बड़ी है और पद्मावती पर बहिन का सा स्नेह रखती है। वासवदत्ता का उदयन पर भी विशेष प्रभाव लक्षित होता है। उदयन की सबसे छोटी रानी का नाम मागन्वी है जिसे अपने रूप का बहुत गर्व है और जो राजा को अपने सौंदर्य-ल में फँसा कर पद्मावती से विमुख कर देती है। अपनी माता वासवी के समान ही पद्मावती भी गौतम पर श्रद्धा रखती है। वासवी के भाई का नाम प्रसेनजित है और वह कौशल का राजा है। उसकी दो रानियाँ हैं। एक रानी की पुत्री का नाम वाजिरा है। दूसरी रानी का नाम शक्तिमती या महामाया है। वह शाक्य राजवंश की दासी-पुत्री है। उसके पुत्र का नाम विरुद्धक है। अजात द्वारा बिम्बसार का सिंहासन से हटाया जाना सुनकर विरुद्धक उसका समर्थन करता है। फलस्वरूप प्रसेनजित उस पर कुपित होकर उसे युवराज पद से वंचित कर देता है और उसकी माता शक्तिमती का राजमाता का गौरव छीन लेता है। इस प्रकार कौशल में विरुद्धक और उसकी माता तथा प्रसेनजित के

बीज संघर्ष का सूत्रपात होता है। प्रसेनजित के सेनापति का नाम बन्धुल जिसकी सुन्दर पत्नी मल्लिका से विरुद्धक प्रेम करता है। प्रसेनजित बन्धुल शक्ति से आतंकित होकर उसे मरवा डालता है। विधवा मल्लिका बुद्ध महान आदर्शों पर चलकर सबकी उग्रता का शमन करती है।

काशी का प्रान्त वासवी को दहेज में मिला था। जब अजातशत्रु बिम्बसार को सिंहासन से हटा देता है तो वासवी अपने भाई के पास यह संदेश भेजती है कि काशी की प्रजा राजस्व अजात को नहीं वासवी को दे। इस पर अजातशत्रु क्रोधित होकर कौशल पर आक्रमण करता है, किंतु मल्लिका के कहने पर जीतकर भी खाली हाथ लौट जाता है। फिर प्रसेनजित और उदयन मिल कर मगध पर आक्रमण करते हैं। विरुद्धक अजातशत्रु से मिल जाता है। किन्तु मगध पराजित हो जाता है तथा प्रसेनजित अजात को बन्दी कर श्रावस्ती (कौशल की राजधानी) ले जाता है। वहाँ अजातशत्रु और प्रसेनजित की कन्या वाजिरा का प्रेम हो जाता है। वासवी अजात को मुक्त करती है। अजात और वाजिरा का विवाह होता है। अन्त में बिम्बसार अजातशत्रु और छलना को क्षमा कर देता है। इधर मल्लिका और बुद्ध के कहने पर प्रसेनजित विरुद्धक को क्षमा कर उसे फिर युवराज बना देता है। अब अजातशत्रु की कथा का अङ्कों और दृश्यों के रूप में विवेचन करेंगे।

अजातशत्रु नाटक के तीन अङ्क हैं। प्रथम अङ्क में नौ दृश्य हैं, द्वितीय में दस और तृतीय में नौ। इस प्रकार अङ्कों का विस्तार प्रायः सा ही है।

पहला अङ्क

पहला दृश्य:—अजातशत्रु अपने चित्रक के खेलने के लिए एक हरि का बच्चा रोज मंगवाता था। किन्तु एक बार शिकारी बच्चा लेकर नहीं आ क्योंकि जब वह उसे पकड़ता है तो उसकी माँ की दर्द भरी दृष्टि के प्रभाव कारण वह उसे छोड़ देता है। इस पर अजातशत्रु उस पर बिगड़ता है और कोड़े से उसे मारने लगता है। इतने में ही पद्मावती आ जाती है और अजात को समझाने का प्रयत्न करती है, कि उसे इतना कठोर नहीं होना चाहिए।

अज्ञातशत्रु बिगड़ जाता है। समुद्रदत्त (देवदत्त का शिष्य) अज्ञात को और भी भड़काता है। इतने में छलना आ जाती है और वह भी अज्ञात का पक्ष लेकर पद्मावती पर नाराज होने लगती है। पद्मावती नाराज होकर कौशाम्बी बापिस जाने के लिये तैयार हो जाती है। इसके पश्चात् वहाँ वासवी आती है और अज्ञात से कुशल पूछती है। अज्ञात उससे भी नाराज होता है और उसकी माता छलना वासवी का अपमान करती है और बुद्ध की कर्पणा का खण्डन करती है। इस प्रकार नाटक के आरम्भ में ही आगे आने वाले व्यापक संघर्ष की सूचना मिलती है।

द्वितीय दृश्य:—महाराज बिम्बसार अकेला बैठा हुआ प्रकृति की नश्वरता और मनुष्य की भ्रमपूर्ण महत्वाकांक्षा के विषय में सोचता दिखाई देता है। छलना आकर वासवी की शिकायत करती है और अपने पति को इस बात के लिये विवश करती है कि वह अज्ञातशत्रु को युवराज बनाने की घोषणा कर दे। वासवी भी आ जाती है और छलना की बात का समर्थन करती है। इतने में भगवान बुद्ध आ जाते हैं और वे भी राजा से यही कहते हैं कि अज्ञात को युवराज बनाकर उसे इस माया मोह से अलग हो जाना चाहिए। चारों ओर से दबाव पड़ने पर भी बिम्बसार यह तर्क देता है कि अज्ञातशत्रु में अभी इतनी योग्यता नहीं है कि वह राज्य का कार्य संभाल सके। किन्तु फिर भी गौतम के कहने पर बिम्बसार अज्ञात को युवराज बनाने के लिए प्रस्तुत होता जाता है और परिषद् को बुलाने की आज्ञा देता है।

बिम्बसार के चरित्र पर यहाँ पूरा प्रकाश पड़ता है। अभी तक उसका स्वयं राज-भोग से तृप्त नहीं हुआ किन्तु वह गौतम की बात टाल नहीं सकता। स्वयं से अलग होने पर भी उसकी वासनाएँ शान्त नहीं होतीं और संघर्ष व्यापक एवं भीषण होता जाता है। गौतम के उपदेश बड़े मार्मिक हैं।

तृतीय दृश्य:—यहाँ यह स्पष्ट होता है कि अज्ञातशत्रु को युवराज बनाने देवदत्त का पूरा-पूरा हाथ है। उसी का शिष्य समुद्रदत्त अज्ञात के पास रहता है और उसे गौतम के विरुद्ध शिक्षा दिया करता है। देवदत्त भी गौतम का परास्त करने के लिए राज्यशक्ति का सहारा लेने के लिए छलना को इस बात के लिये प्रेरित करता है कि वह अज्ञात को युवराज बनवा दे। इस दृश्य

में समुद्रदत्त अजात के युवराज बनने का समाचार देवदत्त को सुनाता है। वह यह सुनकर बहुत प्रसन्न होता है। समुद्रदत्त ही उसे सन्देश देता है कि राज-माता छलना देवदत्त के उपदेशों के अनुसार राज्य चलाना चाहती है। वह ढोंग करता हुआ उसे स्वीकार करता है। मगध का राजवैद्य जीवक इनकी गुप्त बातें सुन लेता है और इनका विरोध करता है। जीवक स्वामिभक्त सेवक हैं। इसी दृश्य में प्रसेनजित का भेजा हुआ सेवक सुदत्त भी उपस्थित होता है। वह वासवी को लिवाने के लिये आया था। क्योंकि महाराज बिम्बसार ने वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया है इसलिए वासवी वहां नहीं जाती।

इस दृश्य में देवदत्त और गौतम के संघर्ष का ज्ञान होता है तथा छलना और देवदत्त के कुचक्र का भी। सुदत्त को यहाँ अचानक ही उपस्थित करके लेखक ने बिम्बसार द्वारा वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने की सूचना दी है। इसका दूसरा उपयोग यह है कि सुदत्त ही आगे चलकर प्रसेनजित को मगध का समाचार सुनाता है।

चौथा दृश्य:—बिम्बसार वासवी से कहता है कि यदि किसी व्यक्ति का अधिकार उसके पुत्र को प्राप्त हो जाय तो उसे बुरा नहीं लगता। इस प्रकार पुत्र विराग की शिक्षा का एक साधन है। किन्तु फिर भी बिम्बसार को अपने अधिकार का ध्यान आ ही जाता है और उसके कारण है अजात का उपेक्षा पूर्ण व्यवहार। तब वासवी उससे यह कहती है कि यदि वह अजात की भिक्षा पर निर्वाह नहीं करना चाहता तो काशी की आय प्राप्त करने के लिये वह प्रयोग करे। बिम्बसार हलकी अनिच्छा प्रकट करते हुये इसे स्वीकार करता है। यहाँ भी बिम्बसार की अधिकार-लोलुपता दिखाई देती है। इसी समय वहाँ जीवक आता है और संसार से असंतुष्ट होकर महाराज के साथ ही वानप्रस्थ आश्रम में रहना चाहता है। और राजा को देवदत्त के कुचक्रों का भी समा-चार देता है। बिम्बसार महात्मा बुद्ध के आत्मबल की प्रशंसा करता है। वासवी जीवक से कहती है कि वह काशी की आय प्राप्त करने का प्रयत्न करे। जीवक काशी के दण्डनायक से मिलते हुए कौशम्बी जाने के लिए तैयार हो जाता है।

यहां भी बिम्बसार की अधिकार-प्राप्ति की इच्छा दिखाई देती है। वह

काशी की आय प्राप्त करने का विरोध तो करता है किन्तु उसमें उतनी शक्ति नहीं है जितनी वानप्रस्थ आश्रम के व्यक्ति के लिये आवश्यक एवं स्वाभाविक है। किन्तु ऐसी दशा में भी बिम्बसार भिक्षुओं के प्रति अपने कर्तव्य को नहीं भूला है। उसके कहने पर वासवी उन्हें अपने सोने का कंगन उतार कर देती है। इससे वासवी की पति-भक्ति और अनासक्ति प्रकट होती है।

इस प्रकार आरम्भिक चार दृश्यों में संघर्ष की व्यापकता और तीव्रता का बीज रूप में दर्शन होता है। और काशी की आय प्राप्ति का प्रयत्न आगे की संपूर्ण घटनाओं को संचालित करता है। यह संघर्ष को चरम अवस्था तक पहुँचाने का मूल कारण है। यद्यपि यह सत्य है कि संघर्ष इससे पूर्व भी विद्यमान है। अभी तक कथा का स्थल मगध है। अब कौशम्बी का दृश्य आता है।

पाँचवाँ दृश्य:—मागन्धी का पिता उसका विवाह गौतम से करना चाहता है, किन्तु गौतम उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देते हैं। इस पर मागन्धी के रूप का अभिमान फुफकार उठता है। वह उदयन की रानी बन जाती है किन्तु अपने अपमान को भूली नहीं है। वह निश्चय करती है कि मैं बुद्ध से अवश्य बदला लूँगी। उन दिनों गौतम बुद्ध पद्मावती के मन्दिर में आकर उपदेश सुनाया करते थे। उदयन के आते ही वह उसके मन में शंका की अंगारी रख देती है जो निरन्तर सुलग-सुलग कर एक भयङ्कर काण्ड का रूप धारण करते करते बुझ जाती है। उदयन के मन में गौतम और पद्मावती के लिये सन्देह उत्पन्न हो जाता है। फिर वह मागन्धी के हाथ से शराब पीता है। इधर उदयन को पद्मावती पर कुपित करने के लिये मागन्धी एक षडयन्त्र रचती है। नौकरानी नवीना से पहले ही कह देती है कि जब वह पद्मावती के महल से उदयन की वीणा लेकर आए तो उसमें एक साँप का बच्चा छिपा लाए। अब मागन्धी नवीना को वीणा लाने की आज्ञा देती है। वह उसमें साँप का बच्चा रखकर ले आती है। उदयन के सामने उसमें से साँप का बच्चा निकल पड़ता है। उसके मन में पद्मावती के प्रति सन्देह तो पहले ही हो चुका था। अब वह विश्वास बनकर उदयन को मथित कर देता है। वह उसी समय पद्मावती से बदला लेने के लिए जाने को प्रस्तुत होता है किन्तु मागन्धी चातुरी से उसे तब शान्त कर रोक लेती है। उदयन वहीं लेट जाता है।

मगध के संघर्ष का वर्णन हो ही चुका । कौशम्बी में घटनाओं का आरंभ भी विरोध में ही होता है । मागन्धी गौतम से बदला लेना चाहती है और उदयन को पद्मावती के विरुद्ध कर देती है । यहाँ मागन्धी के चरित्र की दो मूल विशेषताएँ — सौंदर्य का अत्यधिक गर्व, और भीषण कुटिला—दिखाई देती है । उदयन भी एक दुर्बल, विषयी और संशयात्मा व्यक्ति के रूप में सामने आता है ।

छठा दृश्य:—जीवक स्वयं ही सोचता है कि जिस प्रकार मगध में वासवी की दशा कमजोर है, उसी प्रकार कौशम्बी में पद्मावती की हालत भी शोचनीय है । उदयन बिम्बसार की बुरी दशा सुनकर तनिक भी उत्तेजित नहीं होता । इतने में दासी आकर उसे संदेश देती है कि देवी पद्मावती ने कहा- लाया है कि आप मेरी चिन्ता न करें और माता जी की देख-भाल के लिये, मगध लौट जाएँ । इस समय मैं आपसे नहीं मिल सकती । महात्मा बुद्ध आते हैं और जीवक को निर्भय होकर सद्धर्म पर चलने का आदेश देते हैं । इसके पश्चात् विदूषक वसंतक आता है । परिहास के पश्चात् वह उदयन की विलासता की विषमता की ओर संकेत करता है और जीवक को वासवदत्ता का यह संदेश सुनाता है कि पद्मावती मेरी सगी बहिन है और आप निश्चिन्त रहें, मैं सब ठीक कर लूंगी ।

पद्मावती को अपनी माता का बहुत ध्यान है । यहां महात्मा बुद्ध के आगमन का कोई विशेष प्रयोजन दिखाई नहीं देता । विदूषक का आगमन केवल परिहास के लिये ही नहीं वरन् उसका कुछ उपयोग भी है और वह कि वासवदत्ता का संदेश सुनाता है । अन्यत्र भी विदूषक से दोनों काम लिए गए हैं—परिहास का भी और विशिष्ट समाचार सुनाने का भी ।

मगध और कौशम्बी के दर्शन के पश्चात् हमें कोशल के दर्शन होते हैं और वहाँ भी आरम्भ में ही विद्रोह अंकुरित हो जाता है ।

सातवाँ दृश्य:—सुदत्त मगध का सारा समाचार प्रसेनजित को सुनाता है । अज्ञातशत्रु के उद्धत आचरण का वृत्तान्त सुनकर प्रसेनजित आश्चर्य-चकित हो जाता है । युवराज विरुद्धक अज्ञात के आचरण का समर्थन करता है । राजा क्रोधित होकर उसका युवराज पद उससे छीन लेता है । मंत्री राजा को

समझाने का प्रयत्न करता है किन्तु वह विरुद्धक को पनपने नहीं देना चाहता इतने में वहाँ जीवक भी आ जाता है। प्रसेनजित काशी के दंडनायक के नाम पत्र लिखवा देता है कि वह राज्य की आमदनी वासनी को दिया करे। वहीं सेनापति बन्धुल आ जाता है और अपनी विजय का वृत्तान्त सुनाता है। राजा बहुत प्रसन्न होता है। किन्तु जब सब लोग सेनापति बन्धुल की जय बोलते हैं तब राजा चौंक उठता है।

यहाँ प्रसेनजित के चरित्र की दो मूल विशेषताएँ—कायरता और अधि-कार को बनाए रखने के लिये अन्याय पूर्ण दमन—दिखाई देती हैं। वह जरा से अपराध के लिए विरुद्धक को युवराज पद से हटा देता है जिस पर अमात्य उसकी दुर्बलता की ओर संकेत करता है। बन्धुल की बढ़ती हुई शक्ति और कीर्ति से वह भयभीत हो जाता है। और आगे चलकर उसे मरवाने का प्रयत्न करता है। इसके साथ ही साथ प्रसेनजित में अपने कुल की प्रतिष्ठा का भी बहुत गर्व है। बन्धुल के चरित्र की सरलता और वीरता भी स्पष्ट है।

आठवाँ दृश्य:—विरुद्धक अपने अपमान से बहुत नाराज है। किन्तु वह मल्लिका से प्रेम करता था। उसके पिता ने उसे मल्लिका से विवाह न करने दिया। वह बन्धुल की पत्नी बन गई। प्रेम में असफल होकर और राजा द्वारा अपमानित होकर वह निराशा में डूब जाता है। किन्तु उसकी माता शक्तिमती उसे साधना करने के लिए उत्तेजित करती है। विरुद्धक का खून खौल उठता है और वह सिंहासन-प्राप्ति की प्रतिज्ञा कर वहाँ से चल देता है।

यहाँ विरुद्धक के स्वभाव की अस्थिरता और उग्रता अङ्कित होती है। वह शीघ्र ही निराश होता है, फिर निराशा को तोड़कर उग्र बन जाता है। शक्तिमति उसे प्रोत्साहित तो करती है किन्तु केवल राज्यलक्ष्मी को जीतने के लिए। इससे उसके स्वभाव की उग्रता ही दिखाई देती है। किन्तु वह पुत्र को मनुष्यता की शिक्षा नहीं देती।

नवाँ दृश्य:—पद्मावती अपने महल में उदास बैठी है। पति के नाराज होने पर वह दुखी है। इतने में नीचे से भगवान बुद्ध संघ सहित निकलते हैं वह खिड़की से उनके दर्शन करती है। उसी समय क्रोध में भरा हुआ उदयन

वहाँ आ जाता है और पद्मावती को मारने के लिए तैयार हो जाता है। पद्मापति से मारे जाने में अपना सौभाग्य समझती है और तनिक भी विचलित नहीं होती। इतने में बासवदत्ता आ जाती है और सारे षड्यन्त्र की सूचना उदयन को देती है। वह स्तब्ध हो जाता है। मागन्धी अपने भवन में आग लगाकर भाग जाती है। सब लोग समझते हैं कि वह आग में जल मरी।

पद्मावती के चरित्र की दृढ़ता, उदयन के चरित्र की दुर्बल अस्थिरता और बासवदत्ता की कुशलता का परिचय मिलता है।

प्रथम अङ्क में हमें कथा के तीनों स्थलों—मगध, कोशल और कौशाम्बी—में विरोध का आरम्भ दिखाई देता है। विरोध की इस व्यापकता को देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि प्रसाद का ध्यान विरोध की उत्पत्ति, विकास और शांति दिखाने की ओर ही है। विरोध के अनेकरूप हैं—उसके कारण अनेक हैं और उद्देश्य अनेक हैं। प्रसाद ने सारे संघर्ष को काशी की समस्या से संबद्ध कर उसे संगठित करने का प्रयत्न किया है किन्तु फिर भी मगध, कोशल और कौशाम्बी के संघर्ष अपनी अलग सत्ता बनाए रहते हैं। द्वितीय अङ्क में विरोध का विकास होता है, और उसके दसवें दृश्य में उसकी चरम सीमा है जब कथानक की सारी शक्तियाँ दो दलों में बँटकर एक दूसरे को कुचलने के लिए उद्यत हैं। किन्तु बीच में विरोध की शान्ति का प्रयास भी मल्लिका द्वारा होता है। उदाहरण के लिए प्रसेनजित, कारायण और अजातशत्रु का सदाचार की ओर प्रेरित होना।

दूसरा अङ्क

पहला दृश्य:—समुद्रदत्त काशी का समाचार लेकर अजातशत्रु की सभा में आता है। यह सुनकर कि काशी के दण्डनायक ने राजकर देने से इन्कार किया है अजातशत्रु अत्यन्त क्रोधित हो उठता है। वह समझता है कि उसकी सौतेली माता वासवी ने ही यह षड्यन्त्र रचा है। इतने में ही वहाँ देवदत्त आ जाता है। जब अज्ञात उसे यह बताता है कि कोशल ने काशी में विद्रोह करवा दिया है तो वह उसका सारा उत्तरदायित्व गौतम पर रखता है। वह परिषद् को बुलवाता है। उसी समय विरुद्धक का पत्र अजात के पास आता

है जिसमें वह अज्ञातशत्रु से मिलकर विद्रोह कर कोशल का राज्य प्राप्त करने की कामना प्रगट करता है। देवदत्त उससे सहमत हो जाता है। परिषद् के सामने अज्ञातशत्रु और देवदत्त मगध के हित और उन्नति की बात कहकर उनसे यह स्वीकार करवा लेते हैं कि देवदत्त के निर्देशन के अनुसार कार्य हो। देवदत्त अज्ञात को कोशल से युद्ध के लिए जाने को कहता है। वह परिषद् से यह भी मनवा लेता है कि बिम्बसार और वासवी पर पूर्ण नियन्त्रण रक्खा जाए।

संघर्ष की प्रथम चरमसीमा यहाँ दिखाई देती है। इसके पश्चात् मल्लिका के प्रभाव के कारण संघर्ष की तीव्रता मन्द हो जाती है। किन्तु फिर वह तरंगित होता है और दसवें दृश्य में हमें दूसरी चरमसीमा दिखाई देती है।

दूसरा दृश्य:—राजकुमार विरुद्धक के बुलाने पर बन्धुल इच्छा न होने पर भी उससे मिलने के लिए आता है। वह काशी का सामन्त बना दिया गया है। इधर विरुद्धक भी शैलेन्द्र डाकू के नाम से काशी में ही विचरण कर रहा है। बन्धुल को यद्यपि सामन्त का पद पसन्द नहीं है फिर भी वह राजा की आज्ञा के कारण उसे स्वीकार करता है। विरुद्धक आता है और बन्धुल से कहता है कि मैं डाकू होगया हूँ। जब बन्धुल उसे सावधान करता है तब वह उससे कहता है कि तुम्हें राजा ने यहाँ छल से मरवाने के लिये भेजा है। बन्धुल उसे बन्दी बनाना चाहता है किन्तु वह भाग निकलता है।

उधर मागंधी कौशाम्बी से भाग कर काशी में एक वेश्या के रूप में रहने लगती है। उसका नया नाम श्यामा है। इधर विरुद्धक भी शैलेन्द्र नाम के डाकू के रूप में रह रहा है। श्यामा शैलेन्द्र पर मोहित हो जाती है। रात की भयंकरता में वह उससे आकर मिलती है और प्रेम की भिन्ना माँगती है। शैलेन्द्र पहले तो अस्वीकार कर देता है किन्तु फिर उसके साथ चल देता है।

बन्धुल जैसे प्रचण्ड वीर के हाथों से विरुद्धक का वच कर निकल जाना एक असम्भव सी घटना प्रतीत होती है। दूसरे यहाँ हमें श्यामा के चरित्र में एक मोड़ दिखाई देता है। उसे शैलेन्द्र से प्रेम हो गया है।

तीसरा दृश्य:—जब प्रसेनजित बन्धुल को काशी का सामन्त बनाकर भेज देता है तब उसकी तिरस्कृत रानी महामाया मल्लिका के पास आती है और

उससे कहती है कि बन्धुल को वापिस बुला लेना चाहिये । किन्तु मल्लिका किसी भी प्रकार पति के मार्ग की बाधा बनने के लिए तैयार नहीं है । उसे अपने पति की वीरता पर पूरा विश्वास है और इसके साथ ही वह राजभक्ति को अपने कुल का परम कर्त्तव्य समझती है । तब महामाया (विरुद्धक की माता) उससे यह कहती है कि राजा प्रसेनजित बन्धुल को मरवा देना चाहता है तथा इसी उद्देश्य से उसने शैलेन्द्र को एक गुप्त पत्र भी लिखा है । फिर भी मल्लिका बन्धुल को वापिस बुलाने के लिए तैयार नहीं होती और वह रानी की उपेक्षा करती है । वह चुपचाप चली जाती है ।

यहाँ शक्तिमती का षड्यन्त्रकारी रूप और मल्लिका का दिव्य रूप प्रकट होता है ।

चौथा दृश्य:—शैलेन्द्र धोके से बन्धुल को मार देता है और स्वयं पकड़ा जाता है । श्यामा उसके लिए चिन्तित है कि इतने में वहाँ समुद्रदत्त आता है । उसका यथोचित स्तुति करके श्यामा उसे गाना सुनाती है । समुद्रदत्त जब कामना प्रकट करता है तो श्यामा उससे कहती है कि मैं चिन्तित हूँ क्योंकि मेरा एक सम्बन्धी पकड़ा गया है और दण्डनायक का कहना है कि यदि रात ही रात में मेरे पास हजार मोहरें पहुँच जाएं तो मैं उसे छोड़ दूंगा । समुद्रदत्त वहाँ जाने को तैयार हो जाता है । वास्तव में दण्डनायक ने कहा था कि प्रातःकाल ही शैलेन्द्र को फाँसी दी जाएगी । यदि रात में उसके स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति फँस जाए तो शैलेन्द्र को छोड़ा जा सकता और उसके स्थान पर दूसरे व्यक्ति को फाँसी दी जा सकती है । यही होता भी है । जब समुद्रदत्त दण्डनायक के पास पहुँचता है, वह शैलेन्द्र को छोड़ देता है और उसके स्थान पर समुद्रदत्त को फाँसी चढ़ा दिया जाता है ।

समुद्रदत्त की कामुकता एवं मूर्खता और श्यामा के प्रेम की भयंकरता का चित्रण है ।

पाँचवाँ दृश्य:—मल्लिका अपने पति की हत्या का समाचार सुनकर शोक के अपार सागर में डूब जाती है । उसकी चेतना व्यथा के विष से जलने लगती है । फिर भी वह धीरज धारण करने का प्रयत्न करती है । उसी दिन के लिए उसने सारिपुत्र और मौद्गल्यन को निमंत्रित भी किया था ।

वह उस भीषण शोक में भी अपने कर्तव्य को नहीं भूलती और उन्हें सत्कार-पूर्वक भिक्षा खिलाती है। मल्लिका का आचरण देखकर वे भी चकित हो जाते हैं। उसी समय प्रसेनजित मल्लिका से क्षमा माँगने के लिए आता है। मल्लिका उसे क्षमा कर उसके राज्य से जाने की इच्छा करती है।

छठा दृश्य:—वासवी और बिम्बसार गंभीरता पूर्वक बातें कर रहे होते हैं तभी वहाँ छलना आजाती है। छलना वासवी को यह समाचार सुनाती है कि अज्ञातशत्रु ने काशी जीत ली है। बिम्बसार यह कहता है कि इस समाचार को सुनाने के लिए स्वयं राजमाता को आने की क्या आवश्यकता थी, यह काम तो एक नौकर भी कर सकता था। इस पर छलना उत्तर देती है कि वह सेवक वासवी के भावों को तो नहीं देख सकता था। तात्पर्य यह है कि छलना वासवी को जलाने के लिए आई थी। इस पर बिम्बसार उस पर अत्यन्त कोधित हो उठता है और वह चली जाती है। इसके पश्चात् जीवक आकर यह समाचार सुनाता है कि मागन्धी का षडयन्त्र खुल गया है और पद्मावती फिर सम्मानित हो गई है। वह विरुद्ध के विद्रोह करने और डाकू बनने के समाचार भी सुनाता है। युद्ध में प्रसेनजित घायल होकर वापिस चला गया है। यह समाचार सुनकर बिम्बसार पर निराशा छा जाती है।

सातवाँ दृश्य:—मल्लिका कोशल को त्यागकर कोशल की सीमा पर एक कुटी में रहने लगी। युद्ध में घायल होने पर मल्लिका प्रसेनजित की सेवा करती है। वह स्वस्थ होने लगता है। कारायण युद्ध में पूरे उत्साह से नहीं लड़ता इसीलिये प्रसेनजित की सेना पराजित होती है। वह भी मल्लिका की कुटी पर आजाता है और मल्लिका से कहता है कि तुम्हें प्रसेनजित की रक्षा नहीं करना चाहिये वरन् ऐसी अवस्था में तो उससे बन्धुल की हत्या का बदला लेना चाहिये। किन्तु मल्लिका अपने कर्तव्य पर अडिग रहती है और कारायण को भी ठीक से न लड़ने के लिए फटकारती है। अन्त में वह कारायण की रक्षा में ही प्रसेनजित को श्रावस्ती भेज देती है। उनके चले जाने के पश्चात् ही क्रोध में भरा हुआ अज्ञातशत्रु प्रसेनजित को खोजते हुए आता है। मल्लिका से प्रसेनजित के विषय में पूछता है। वह उसे शीतल वाणी में क्रोध त्यागकर स्वस्थ होने के लिए कहती है। अज्ञात पर इसका गम्भीर प्रभाव पड़ता है।

जब अज्ञात को यह ज्ञात होता है कि मल्लिका बन्धुल की पत्नी है और उसने अपने पति की हत्या कराने वाले प्रसेनजित की प्राणरक्षा की है तो वह चमत्कृत हो जाता है और शान्त होकर वापिस मगध लौट जाता है ।

आठवाँ दृश्य:—शैलेन्द्र निरन्तर श्यामा के भवन में पड़ा-पड़ा उकता जाता है और एक दिन उसे साथ लेकर एक उपवन में जाता है । वहाँ दोनों विहार करते हैं । श्यामा थक कर सो जाती है । शैलेन्द्र श्यामा से छुटकारा पाना चाहता है इधर श्यामा एक भयंकर स्वप्न देख रही है । वह जाग उठती है फिर सो जाती है । शैलेन्द्र उसका गला घोट देता है और स्वयं उसका सब धन लेकर चम्पत हो जाता है । उसके जाने के पश्चात् ही महात्मा बुद्ध और आनन्द वहाँ आते हैं । वे श्यामा को लेकर विहार में जाते हैं । वहाँ श्यामा फिर होश में आजाती है । वही जनता जो पहले गौतम को कलंकित करती थी, उसके जी उठने पर गौतम की महिमा गाने लगी । उसी समय वहाँ रानी शक्तिमती और कारायण आ जाते हैं । शक्तिमती उसे मिलाने का प्रयत्न करती है । कारायण भी उसके साथ विद्रोह में मिल जाता है ।

नवाँ दृश्य:—जीवक और वसन्तक वार्तालाप करते हुए आते हैं । पहले तो वसन्तक परिहास करता रहता है फिर पद्मावती का यह सन्देश सुनाता है कि केवल अज्ञात को सीधे मार्ग पर लाने के लिए ही महाराज उदयन और प्रसेनजित मिलकर मगध पर हमला करेंगे । इसमें अज्ञात को तनिक भी हानि नहीं होगी ।

यहाँ प्रसाद ने राजाओं के खुशामदी सभासदों की निकम्मी मनोवृत्ति का चित्रण किया है ।

दसवाँ दृश्य:—मल्लिका के समझाने पर कोशल को जीते बिना ही अज्ञात-शत्रु वापिस मगध लौट जाता है । तब उसकी माँ छलना उसे फटकारती है । किन्तु अज्ञात युद्धों की भीषणता की चर्चा करता है और अब भी पिता से क्षमा मांगने के लिए प्रस्तुत है । किन्तु देवदत्त आकर उसे फिर से उत्तेजित करता है । तभी वहाँ विरुद्धक आजाता है । वह अज्ञातशत्रु से मिलकर कोशल और कौशाम्बी की सेना के विरुद्ध लड़ना चाहता है । अज्ञातशत्रु मान लेता है और यह तय होता है कि कोशल की सेना पर अज्ञात आक्रमण करे और

कौशाम्बी की सेना पर विरुद्धक ।

यहाँ विरोध दूसरी बार चरमसीमा पर पहुँचा है । द्वितीय अङ्क में केवल विरोध का विकास और उसकी दो चरम सीमाएँ मिलती हैं ।

तीसरा अङ्क

पहला दृश्य:—मगध का कोशल और कौशाम्बी से युद्ध होता है । अजातशत्रु पराजित होता है और प्रसेनजित उसे बन्दी बनाकर अपने साथ श्रावस्ती ले जाता है । सब कुछ चौपट हो जाने के पश्चात् छलना को होश आता है । वह देवदत्त को सारे अपराधों का दोषी ठहराती है और उसे बन्दी बनवा लेती है । इतने में ही वहाँ वासवी आजाती है । छलना उस पर भी बिगड़ती है । वासवी छलना से यह कहती है कि मैं स्वयं श्रावस्ती जाकर अजातशत्रु को लेकर आती हूँ और तुम तब तक अपने पति की सेवा कर अपने जीवन को सफल करो । पहले तो छलना को उस पर विश्वास नहीं होता किन्तु फिर वह पश्चात्ताप करती है और वासवी को जाने देती है । वासवी के कहने पर वह देवदत्त को भी छोड़ देती है ।

वासवी के चरित्र की महानता चित्रित है । उसके सर्वनाश का प्रयत्न करने वाला देवदत्त भी उसे धर्म-मार्ग से विचलित नहीं कर सकता ।

दूसरा दृश्य:—प्रसेनजित की दूसरी रानी की पुत्री का नाम वाजिरा है । वह अजातशत्रु के सौंदर्य को देखकर उसकी ओर आकर्षित होती है । वह अजातशत्रु से मिलने के लिए जेलखाने में जाती है । अजातशत्रु भी वाजिरा की ओर आकर्षित होता है । दोनों का एक दूसरे से परिचय होता है । वाजिरा अजात को अपनी माला पहना देती है । वह अजात को मुक्त कर देती है किन्तु अजात जाना नहीं चाहता क्योंकि उसके चले जाने पर प्रसेनजित वाजिरा पर क्रुद्ध होगा और वह स्वयं भी वाजिरा से दूर नहीं होना चाहता । इतने में ही वहाँ कारायण आ जाता है । कारायण वाजिरा से प्रेम करता है और इसीलिए युद्ध में वह प्रसेनजित के विरुद्ध विद्रोह नहीं करता । अब वाजिरा और अजात को एक साथ देखकर उसकी सारी आशाओं पर पानी फिर जाता है । वह अजात पर नाराज होता है किन्तु विवश होकर चला जाता

है। वाजिरा भी चली जाती है और अज्ञात फिर बन्दीगृह में चला जाता है। इतने में उधर से प्रसेनजित और वासवी आते हैं। वासवी अज्ञात को मुक्त करा के गोद में भर लेती है। अज्ञात को जीवन में पहली बार माँ की ममता का सुख प्राप्त होता है।

यहाँ एक विशेषता है। विरोध के शमन हो जाने के पश्चात् अज्ञातशत्रु फल की ओर अग्रसर हो जाता है। फल प्राप्ति के कारण संघर्ष नहीं होता, वह उसे सहज ही प्राप्त हो जाता है।

तीसरा दृश्य:—मगध तथा कोशल और कौशाम्बी के युद्ध में विरुद्धक भी घायल होता है। मल्लिका उसे भी सेवा के लिये अपनी कुटी में ले आती है। और उसकी सेवा करती है। वह स्वस्थ हो जाता है किन्तु उसे यह भ्रम हो जाता है कि संभवतः मल्लिका उससे प्रेम करने लग जाती है। वह स्वस्थ होकर कुटिया के बाहर घूमने के लिए चला जाता है। मल्लिका भी वहाँ आ जाती है, और विरुद्धक पर स्पष्ट कर देती है कि मैंने केवल कर्तव्य के अनुरोध से ही तुम्हारी रक्षा की है। तुमने मेरे पति की हत्या की है और अन्य भी अनेक पाप किए हैं। अब तुम्हें स्वस्थ होकर अपने जीवन को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। इतने में ही वहाँ श्यामा आ जाती है और शैलेन्द्र को उसकी नीचता के लिये फटकारती है। मल्लिका की भी फटकार सुनकर विरुद्धक श्यामा को स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाता है। किन्तु श्यामा मल्लिका के पास ही रहना चाहती है। तब मल्लिका उसे अपनी भोंपड़ी पर छोड़कर स्वयं विरुद्धक को साथ लेकर उसे क्षमा दिलाने के लिए प्रसेनजित के पास जाती है।

मल्लिका के चरित्र की एक महान विशेषता है। प्रसेनजित, अज्ञातशत्रु, कारायण, विरुद्धक और श्यामा सभी मल्लिका की कुटिया पर आकर ही सत्य पथ की ओर अग्रसर होते हैं।

चौथा दृश्य:—वाजिरा और अज्ञात के प्रेम और उनके विवाह की चर्चा सुनकर कारायण बड़ा दुखी होता है। वह शक्तिमती के पास जाता है और उससे प्रार्थना करता है कि वह वाजिरा से उसका सम्बन्ध करा दे। किन्तु शक्तिमती अपनी असमर्थता प्रकट करती है। इसके पश्चात् ही वह अपनी वर्तमान दशा से लुब्ध हो उठती है और कारायण से पूछती है कि पुरुष को क्या

अधिकार है कि वह उसे राजमाता के पद से वंचित कर दे ? इस पर दोनों में स्त्री एवं पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में वाद-विवाद होता है । मल्लिका चरित्र सुनकर नत मस्तक हो जाती है । इसी बीच में वहां मल्लिका और विरुद्धक आ जाते हैं । शक्तिमती अपनी भूल स्वीकार करती है । मल्लिका उसे महाराज से क्षमा माँगने को कहती है । कारायण विरुद्धक से और विरुद्धक कारायण से क्षमा याचना करते हैं ।

मल्लिका के प्रभाव से शक्तिमती भी अपनी राह पर आ जाती है ।

पाँचवाँ दृश्यः—अज्ञातशत्रु और वाजिरा का विवाह हो जाता है । दोनों ही वर-वधू के वेश में कोशल की सभा में आते हैं । साथ में प्रसेनजित शक्तिमती, मल्लिका, विरुद्धक, वासवी और कारायण भी हैं । मल्लिका प्रसेनजित से प्रार्थना करती है कि वह अपनी त्यागी हुई पत्नी शक्तिमती को क्षमा कर दे । शक्तिमती भी अपने अपराधों के लिये क्षमा मांगती है । मल्लिका के अनुरोध से वह राजा उसे अङ्गीकार कर लेता है । फिर वह देवी विरुद्धक के लिये क्षमा याचना करती है । राजा उसके साथ न्याय करना चाहता है, किन्तु मल्लिका उसे समझाती है कि विरुद्धक के अपराधों का भी उत्तरदायित्व उसी पर है । विरुद्धक बहुत खेद प्रकट करता हुआ क्षमा याचना करता है । प्रसेनजित उसे भी क्षमाकर देता है । उसी समय वहाँ महात्मा बुद्ध प्रवेश करते हैं । वह राजा से पूछते हैं कि तुम विरुद्धक को त्याज्य पुत्र क्यों कह रहे हो । प्रसेनजित कहता है कि दासी-पुत्र सिंहासन का अधिकारी नहीं हो सकता । इस पर महात्मा बुद्ध मानव-मानव की समता का उपदेश करते हैं । सभी उसे स्वीकार करते हैं । प्रसेनजित विरुद्धक को युवराज बना देता है । वाजिरा और विरुद्धक में भी मनमुटाव दूर हो जाता है ।

यहाँ कथा की एक धारा समाप्त हो जाती है । अभी अज्ञातशत्रु की क्षमा की प्राप्ति शेष है ।

छठा दृश्यः—दो नागरिक महात्मा बुद्ध और देवदत्त के विषय में बात-चीत करते हैं । देवदत्त बुद्ध के प्राण लेने के लिये उनके पास आ रहा होता है । मार्ग में एक स्थान पर जल पीने के लिये नदी में उतरता है और

फिर उसी में लोप हो जाता है। दोनों महात्मा बुद्ध की महानता के गीत-गाते हैं। उनके जाने के पश्चात् विदूषक आता है। और वह यह समाचार सुनाता है कि मागन्धी अब आम्रपाली हो गई है और आम बेचा करती है।

देवदत्त की कथा प्रासंगिक है। महात्मा बुद्ध के महान व्यक्तित्व की भाँकी दिखाने के लिये यह घटना दिखानी आवश्यक थी।

सातवाँ दृश्य:—दरिद्र ब्राह्मण की बेटी और उदयन की रानी मागन्धी, काशी की वेश्या श्यामा अब आम्रपाली के रूप में हमारे सामने आती हैं। उसे रूप के अभिमान की भीषणता दिखाई देती है और अब वह शान्त हो जाती है। तभी वहाँ महात्मा बुद्ध आते हैं। उन्हें देखकर उसका जीवन घन्य हो जाता है। वह अपने अपराधों को स्वीकार करती है और धर्माचरण की प्रतिज्ञा करती है। महात्मा बुद्ध उसे परोपकार का उपदेश देते हैं। मागन्धी को महात्मा बुद्ध से जीवन के आरंभ में ही प्रेम था। आज वह अपना प्रेम सफल होता हुआ देख रही है। महात्मा बुद्ध उसे उन पुराने भावों को भूल जाने के लिये कहते हैं। किन्तु वह आग्रह करती है कि आप मुझे इस प्रेम के भाव के सुख से वंचित मत कीजिए। जीवन भर मैं केवल यही तो प्राप्त कर सकी हूँ। महात्मा बुद्ध कहते हैं “अच्छा ! आम्रपाली कुछ खिलाओगी ?”

इसके पश्चात् मागन्धी बुद्ध की शरण का आश्रय ग्रहण करती है।

आठवाँ दृश्य:—छलना पद्मावती से कहती है कि मैंने तुम्हारे साथ बुरा व्यवहार किया है। इसके लिए मुझे खेद है। वह अज्ञात और छलना को सगे भाई-बहिन के समान रहने को कहती है। इतने में वहाँ वासवी आती है। छलना उससे क्षमा माँगती है। वह उसे क्षमा कर देती है और दोनों परिहास के रस में लीन हो जाती हैं।

नवाँ दृश्य:—बिम्बसार को भी ग्लानि हो रही है। क्योंकि उसने अधि-कार लोलुपता के वश होकर काशी लेनी चाही उसी कारण तो इतना उत्पात हुआ है। तभी वहाँ अज्ञातशत्रु आता है और पिता से क्षमा मांगता है। छलना भी आकर अपने पति के पैरों पर गिर पड़ती है और अपने अपराधों पर आँसू बहाती है। वासवी प्रवेश करके दोनों को क्षमा कर देने का अनुरोध करती है। पद्मावती भी आ जाती है और पिता से दोनों के लिए क्षमा मांगती

है। बिम्बसार दोनों को क्षमा कर देता है। फिर पद्मावती पिता से यह कहती है कि वह अज्ञात के पुत्र को एक स्नेह-चुम्बन आशीर्वाद के साथ दें। बिम्बसार इतना सुख एक साथ सहन नहीं कर सकता। गिर पड़ता है। उसी समय महात्मा बुद्ध प्रवेश करते हैं और अभय का हाथ उठाते हैं।

यद्यपि अन्त में बिम्बसार की मृत्यु होती है किन्तु भगवान बुद्ध का प्रवेश “बिम्बसार के हृदय की तथा उस अवसर की पूर्ण शान्ति के सूचक हैं।”

सम्पूर्ण कथा की विवेचना से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि उसकी दो निर्दिष्ट धाराएँ हैं। एक का सम्बन्ध मगध से है और उसके पात्र बिम्बसार अज्ञात, वासवी आदि हैं, तथा दूसरी का संबंध कोशल से है और उसके पात्र प्रसेनजित, विरुद्धक आदि हैं। दोनों को जोड़ने वाली दो घटनाएँ हैं—काशी के लिये युद्ध और अज्ञात तथा वाजिरा का विवाह। दोनों धाराओं की प्रवृत्तियों में पर्याप्त समानता है आरम्भ में भी और अन्त में भी इसलिये दोनों में विरोध नहीं है।

संघर्ष और क्रान्ति की अनेकरूपता और व्यापकता की ओर ऊपर संकेत किया जा चुका है। डा० दशरथ ओझा ने भी अज्ञातशत्रु नाटक के विषय में यही लिखा है—“इस नाटक में सर्वत्र क्रान्ति का विकट घोष सुनाई पड़ता है। वह क्रान्ति राजनैतिक क्षेत्र में राजाओं के विरुद्ध राजकुमारों की है, सामाजिक क्षेत्र में अभिजात के विरुद्ध निम्न वर्ग की है; धार्मिक क्षेत्र में रूढ़िवाद के विरुद्ध सुधारवाद की है; कौटुम्बिक क्षेत्र में पुरुषों के प्रति ‘स्त्रियों की है।’ किन्तु इस क्रान्ति के स्वर के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ मूल्यवान है जिसका मूल्यांकन आगे किया जाएगा।

चरित्र-चित्रण

किसी भी कथा के दो प्रधान तत्व होते हैं। एक पात्र और द्वितीय घटनाएँ। वास्तव में इन दोनों में अभेद है क्योंकि साहित्य या जीवन तो एक अखण्ड सृष्टि है। घटनाएँ पात्रों की व्यग्र चेतना की समग्र अभिव्यक्तियाँ हैं। जो पात्रों को प्रभावित भी करती हैं और उनके चरित्र पर प्रकाश भी डालती है। नाटक में पात्रों पर कुछ प्रतिबन्ध होते हैं और घटनाओं का भी विशिष्ट संगठन होता है। इन प्रतिबंधों और विशिष्ट संगठन के कारण नाट्य कला कठिन तो हो जाती है किन्तु इन्हीं के कारण उसकी प्रभावात्माकता में भी विशेष तीव्रता आ जाती है। पात्रों की सजीवता हमें विवश कर देती है कि हम उनके प्रति कोई धारणा बनाएँ और उनसे कुछ शिक्षा ग्रहण करें। पात्र और सामाजिक के इसी घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण ही प्राचीन भारतीय साहित्य-शास्त्रियों ने यह नियम बनाया कि नाटक आदि का नायक कोई श्रव दिव्य-गुण-सम्पन्न व्यक्ति हो। नायक के चरित्र की महानता कृति के प्रभाव की दिव्यता बन जाती है और साहित्य का उद्देश्य सफल हो जाता है।

चरित्र की दृष्टि से पात्रों को तीन वर्गों में रखा जाता है—देव वर्ग, मानव वर्ग और राक्षस वर्ग। किन्तु मुझे पात्रों का इस प्रकार का वर्गीकरण अवैज्ञानिक प्रतीत होता है। क्योंकि पात्रों के चरित्र को इन वर्गों में बाँधकर हम उन परिस्थितियों या घटनाओं का तिरस्कार करते हैं जिनके बीच उसका निर्माण होता है, और इस प्रकार हम पात्रों और घटनाओं को एक दूसरे से बिल्कुल असंपृक्त इकाइयों के रूप में स्वीकार करने की भूल करते हैं। मेरे विचार में तो हमें पात्रों के चरित्रों का वर्गीकरण उनकी परिस्थितियों के प्रकाश में ही करना चाहिए। इस प्रकार का प्रयत्न करने पर हम पात्रों के दो वर्ग देखते हैं। प्रथम प्रकार के तो पात्र वे हैं जो विषम परिस्थितियों के समक्ष

झुक जाते हैं और द्वितीय प्रकार के पात्र वे हैं जो विषम परिस्थितियों में घिर कर भी पद्मपत्रभिवाम्यसा अछूते रहते हैं। विषम परिस्थितियों से प्रभावित होने की बात इसलिए कही गई है कि अनुकूल परिस्थितियों से प्रभावित या न प्रभावित होने का सवाल ही नहीं उठता। इस आधार को मानकर वर्गीकरण करने पर हम देखते हैं कि गौतम बुद्ध, मल्लिका, वासवी और पद्मावती ऐसे पात्र हैं जो विषम परिस्थितियों में भी अपने आदर्श से नहीं डिगते और अज्ञात आदि ऐसे पात्र हैं जो अपने आप को विषम परिस्थितियों से बचा नहीं सकते। देव पात्र और मानव पात्र के वर्ग बनाने पर एक बड़ा भारी दोष—और विशेषकर प्रसाद के नाटकों के विवेचन में—यह उत्पन्न हो जाता है कि प्रसाद के अनुसार देवत्व ही पूर्ण मनुष्यत्व है। लेखक की मान्यता के विरोधी सिद्धान्त से उसका मूल्यांकन करना अनुचित प्रतीत होता है। विद्यार्थी के लिए तथाकथित वर्गीकरण का उपयोग है किंतु उसे उसका उपयोग सँभलकर करना चाहिए।

समाज में हम देखते हैं कि चरित्रों की विशेषताओं और विभिन्नताओं की सीमा अत्यन्त विस्तृत है। नीच से नीच व्यक्ति भी देखने में आते हैं और महान से महान भी। यदि साहित्य और जीवन एक चेतना के ही दो पहलू हैं तो जो चरित्रगत विभिन्नता समाज में पाई जाती है वही साहित्य में भी होनी चाहिए और होती ही हैं। अज्ञातशत्रु में एक ओर तो विरुद्धक, छलना और मागन्धी जैसे लुद्र-चरित्र हैं और दूसरी ओर बुद्ध और मल्लिका जैसी भव्य प्रतिमाएँ भी हैं।

किसी भी रचना में कुछ पात्र ऐसे होते हैं जो लेखक के आदर्श होते हैं, उसके मुरम्य भावों के आलम्बन होते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जिनके साथ उसकी मनोवृत्ति मेल नहीं खाती। इसी प्रकार सामाजिक के लिए भी कुछ पात्र आकर्षण और श्रद्धा के विषय होते हैं और कुछ पात्र घृणा और उदासीनता के आलम्बन होते हैं। जिन पात्रों से सामाजिक का लगाव है उन्हें अनुकूल पात्र कह सकते हैं। जिनके साथ उनके हृदय का लगाव नहीं होता वे प्रतिकूल पात्र कहे जा सकते हैं। यह एक ऐसा सत्य है जिससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। वास्तव में तो यही सत्य रस-सिद्धान्त का मूल आधार है।

यहाँ इस विषय पर प्रकाश डालने का अवकाश नहीं है। इसे अन्यत्र प्रस्तुत किया जायगा। अज्ञातशत्रु में भी कुछ पात्र ऐसे मिलेंगे जिनके साथ हमारी सहानुभूति है और कुछ पात्र ऐसे मिलेंगे जिनका प्रसंग आते ही हृदय चिढ़ जाता है। गौतम पहले प्रकार के पात्र हैं और देवदत्त दूसरे प्रकार का।

अब अज्ञातशत्रु के कुछ प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण किया जाएगा।

[पुरुष पात्र]

१—अज्ञातशत्रु

अज्ञात एक बिगड़ा हुआ राजकुमार है। स्वभाव की उग्रता उसे अपनी माता से विरासत में मिली है। उसके पालन-पोषण में उसकी माता का ही पूरा हाथ रहा है। जिस प्रकार उसकी माँ अपने किसी प्रतिद्वन्दी की बात नहीं सह सकती उसी प्रकार अज्ञात भी किसीका विरोध सहन नहीं कर सकता। वह समझता है कि सारा संसार मेरे लिये ही बना है और मैं स्वतन्त्र हूँ। जो भी चाहूँ कर सकता हूँ। नाटक के आरम्भ में ही हमें कुमार अज्ञात की उग्रता दिखाई देती है, जो युवराज अज्ञात में तीव्र होकर सेनापति अज्ञात में (जब वह कौशल पर आक्रमण करने जाता है) भीषण रूप में प्रकट होती है।

नाटक के आरम्भ में अपने चित्रक से खेलने के लिए मृगशावक न लाने पर लुग्धक की चमड़ी उधेड़ता है। उसकी बहिन पद्मावती उसे समझाती है किन्तु वह उसका भी विरोध करता है। उसकी माँ आकर उसका समर्थन करती है और पद्मावती का अपमान करती है। अज्ञात का अहम् भड़क उठता है। यहाँ हमें इस बात का ज्ञान होता है कि किस प्रकार माँ का अनुचित प्रेम पुत्र को बिगाड़ देता है ?

अज्ञात का व्यक्तित्व बड़ा दुर्बल है। उसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं, निज का कोई सिद्धान्त या आदर्श नहीं है। इसी कारण वह परिस्थितियों की लहरों में लुढ़कता दिखाई देता है। अन्य पात्र उसे जिस ओर प्रेरित करते हैं वह उसी ओर चल देता है। आरम्भ में वह अपनी माता छलना के निर्देशन

के अनुसार चलता है। समुद्रदत्त की बातें भी उसे उद्धत मार्ग पर ले जाती हैं। छलना अज्ञात को उचित शिक्षा नहीं देती। उसने उसे केवल अहंकार और अधिकार लोभपता की शिक्षा दी है। पिता के नियन्त्रण की चमक उसके चरित्र में नहीं है। इस बात को अज्ञात ने अन्त में स्वीकार किया है। वह अपने पिता से क्षमा-याचना करते हुए कहता है—

“नहीं पिता, मुझे भ्रम हो गया था। मुझे अच्छी शिक्षा नहीं मिली थी। मिला था केवल जंगलीपन की स्वतन्त्रता का अभिमान—अपने को विश्वभर में स्वतन्त्र जीव समझने का झूठा आत्म सम्मान।”

बिम्बसार—वह भी तो तुम्हारे गुरुजन की ही दी हुई शिक्षा थी। तुम्हारी मां थी—राजमाता।

अज्ञात०—वह केवल मेरी मां थी—एक सम्पूर्ण अङ्ग का आधा भाग; उसमें पिता की छाया न थी—पिता! इसलिए आधी शिक्षा अपूर्ण ही होगी।”

(पृ० १४३)

अज्ञात को केवल उसकी माँ ही नहीं उकसाती वरन् वह देवदत्त की क्रूरता का भी खिलौना बन जाता है। देवदत्त उसे दो प्रकार से प्रभावित करता है। अप्रत्यक्ष रूप से तो वह छलना के द्वारा उसे अपने नियन्त्रण में रखना चाहता है क्योंकि छलना पर उसका विशेष प्रभाव है। देवदत्त समुद्रदत्त पर प्रकट करता है कि मेरी प्रेरणा से ही राजमाता ने अज्ञात को युवराज बनाने का आग्रह किया। जब अज्ञात युवराज बन जाता है और काशी का प्रान्त विद्रोह करता है तब तो देवदत्त प्रत्यक्ष रूप से अज्ञात को युद्ध के लिए प्रेरित करता है।

अज्ञात के चरित्र की दुर्बलता का एक उदाहरण और भी मिलता है। जब वह प्रसेनजित को पराजित करता है और वह उसे खोजता हुआ मल्लिका के पास पहुँचता है तो मल्लिका की सौम्य वाणी से वह शान्त होकर वापिस चला आता है। मल्लिका की वाणी सुनकर वह कहता है—

“देवि, आप कौन हैं? हृदय नम होकर आप ही आप प्रणाम करने को झुक रहा है। ऐसी पिघला देने वाली वाणी तो मैंने कभी नहीं सुनी।”

यहाँ यह स्पष्ट होता है कि आज तक अज्ञातशत्रु ने कभी भी नम्र वाणी

ही नहीं सुनी। वह हमेशा विषैले वातावरण में ही रहा। जब वासवी उसे कोशल के बन्दीगृह से छुड़ाती है तब वह ये शब्द कह कर मगध लौटने से इन्कार करता है—

“नहीं माँ, अब कुछ दिन उस विषैली वायु से अलग रहने दो। तुम्हारी शीतल छाया का विश्राम मुझसे अभी नहीं छोड़ा जाएगा !” पृ० ११७

किन्तु मल्लिका के दिव्य ज्योति की झलक देखकर अज्ञात को तुरन्त उसी ‘विषैली वायु’ में लौटना पड़ता है। यहाँ फिर उसके चरित्र की दुर्बलता उसे दगा देती है। यद्यपि वह युद्ध की भीषणता से विरक्त हो जाता है किन्तु माता की तेज घुड़की और देवदत्त की प्रेरणा पाकर वह फिर जुब्ध होता है। मल्लिका के प्रभाव की सौम्यता स्थाई नहीं है और क्षणिक शान्ति को स्थायी बनाने की शक्ति अज्ञात में थी नहीं। वह फिर युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाता है। यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि छलना और देवदत्त ने ही अज्ञात के व्यक्तित्व की दुर्बलता को गर्हित दिशा की ओर मोड़ा है। छलना ने देवदत्त के बहकावे में आकर अज्ञात को उग्र मार्ग की ओर प्रेरित किया। यह बात छलना के इस कथन से पुष्ट होती है—

“धूर्त ! तेरी प्रवंचना से मैं इस दशा को प्राप्त हुई, पुत्र बन्दी होकर विदेश को चला गया और पति को मैंने स्वयं बन्दी बनाया। पाखंड, तूने ही यह चक्र रचा है।”

व्यक्तित्व की दुर्बलता के साथ-साथ अज्ञात में दूसरा दुर्गुण यह है कि उसका स्वभाव बड़ा उद्धत है। नाटक के आरम्भ में हमें उसकी उग्रता का परिचय मिलता है। समुद्रदत्त देवदत्त से कहता है—

किंतु गुरुदेव ! युवराज है बड़ा उद्धत, उसके संग रहने से भी डर मालूम होता है बिना आपकी छाया के मैं तो नहीं रह सकता।”

समुद्रदत्त जैसा कुचक्री व्यक्ति भी अज्ञात से भयभीत हो जाता है। इसके अतिरिक्त प्रथम दृश्य में और मल्लिका की भोंपड़ी में हमें अज्ञात की क्रूरता की भयंकरता दिखाई देती है। शिकारी के मन में हरिण के बच्चे को पकड़ते हुए दया उठ सकती है किन्तु अज्ञात का मन यह सुनकर कुपित ही होता है। मल्लिका की भोंपड़ी के पास प्रसेनजित को ढूँढ़ता हुआ वह कहता है—

“कहां गया ? मेरे क्रोध का कन्दुक, मेरी क्रूरता का खिलौना, कहां गया रमणी शीघ्र ! बता—वह घमण्डी कोशल सम्राट कहां गया ?”.

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने एक ‘पुजारिन’ शीर्षक की एक कविता में अज्ञातशत्रु के राज्य के आतंक का चित्र खींचा है। अज्ञात की क्रूरता से उसकी पत्नी, उसकी लड़की और उसकी सारी प्रजा भयभीत रहती है। रवीन्द्र ने वहाँ अज्ञात को बौद्ध धर्म का कट्टर विरोधी दिखाया है। बिम्बसार बुद्ध से विशेष प्रभावित था उसने बुद्ध का नख लेकर एक स्तूप बनवाया था जो अज्ञात के राज्यकाल में अन्धकार से घिरे हुये खंडहर के रूप में अवशिष्ट था। एक पुजारिन वहाँ दीपक जलाती है और अज्ञात की आज्ञा के अनुसार तुरंत मार दी जाती है। प्रसाद ने अज्ञात को बाद में चलकर बुद्ध का अनुयायी दिखाया है। यह पुजारिन के अज्ञात से प्रसाद के अज्ञात की भिन्नता है। किन्तु क्रूरता का गुण दोनों में है—एक में अन्त तक और दूसरे में बीच तक।

‘अज्ञात शत्रु में सफल राजा के भी दो गुण पाए जाते हैं—प्रथम शौर्य और द्वितीय राजनीतिक कुशलता। जब अज्ञात को कोठरी के विद्रोह की सूचना मिलती है, वह घबराता नहीं है वरन् पूरी शक्ति के साथ उसके कुचलने का प्रयत्न करता है। और फिर वह परिषद् के सामने इस समस्या को उस रूप में रखता है कि सभी सदस्य उससे सहमत हो जाते हैं।

युद्ध की भीषणता देखकर अज्ञात में मानवोचित संवेदना भी जाग उठती है। प्रसेनजित को मारे बिना ही मगध लौट आने पर उसकी माँ उस पर नाराज होती है। इस पर वह कहता है—

“माँ ! क्षमा हो। युद्ध में बड़ी भयाकनता होती है कितनी स्त्रियां अनाथ हो जाती हैं। सैनिक जीवन का महत्वमय चित्र न जाने किस षडयन्त्रकारी मस्तिक की भयानक कल्पना है। सम्यता से मानव की जो पाशव वृत्ति दबी हुई रहती है, उसी को उसमें उत्तेजना मिलती है। युद्धस्थल का दृश्य बड़ा भीषण होता है।”

पृ० १०६

इस कथानक में लेखक की आवाज गूँजती दिखाई देती है। और यह निर्विवाद है कि लेखक उसी पात्र के द्वारा अपने आदर्श प्रकाशित कराएगा जिसके साथ उसकी सहानुभूति हो। यहां यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ‘अज्ञात

के भीतर मानव समाज के हितों का ध्यान उदित होता है—चाहे अपने द्वारा संघटित युद्ध की भीषणता देखकर ही ।

अज्ञात की उपरोक्त बात सुनकर छलना उससे कहती है—

“कायर ! आँख बन्द कर ले ! यदि ऐसा ही था तो क्यों बूढ़े बाप को हटाकर सिंहासन पर बैठा ?

अज्ञात०—तुम्हारी आज्ञा से माँ ! मैं आज भी सिंहासन से हटकर पिता की सेवा करने को प्रस्तुत हूँ ।”

अज्ञात अपने पिता को बिल्कुल भूला नहीं है ; किन्तु छलना के दबाब ने और देवदत्त के कुचक्रों ने अज्ञात की कर्तव्य-भावना को कुचले रखने का असफल प्रयत्न किया ।

अज्ञात के युवराज के रूप की निष्ठुरता, राज के रूप की उग्र सत्ता और सेनापति के रूप की भीषणता दिखा दी गई है । किन्तु इतना ही उसका चरित्र नहीं है । उसके कुछ रमणीय दृश्य भी हैं । प्रेमी के रूप में अज्ञात सफलता पहली बार देखता है और उसकी ओर आकर्षित होता है । यह ऊपर दिखाया जा चुका है कि प्रथम युद्ध की भयंकरता देखकर अज्ञात का हृदय द्रवित हो जाता है । द्वितीय युद्ध की निर्दयता का दृश्य और अपनी असफलता का आघात उसे और भी सत्य के समीप ले आता है । उस सत्य को व्यवस्थित रूप में प्रकाशित करने वाली है वाजिरा । इससे पूर्व अज्ञात ने अपने चारों ओर कुटिलता का दम्भ देखा और उसे भी सभी ने क्रूरता में प्रवृत्त किया । उसके मधुर रूप की ओर किसी का ध्यान गया ही नहीं । वाजिरा के लिए अज्ञात में प्रेम और शौर्य छलकते दिखाई देते हैं । वह अज्ञात के विषय में यह सोचती है—

“सुन्दर राजकुमार ! कितनी सरलता और निर्भीकता इस विशाल भाल पर अंकित है । अहा ! जीवन धन्य हो गया है ।” और यहीं से अज्ञात के चरित्र का एक नवीन और रमणीय अध्याय खुलता है । अज्ञात का मन युद्ध की वीरता से त्रस्त है । उसका जीवन निराशा के अन्धकार से घिरा हुआ है । देखिए वह वाजिरा को किस रूप में देखता है—

“इस श्यामा रजनी में चन्द्रमा की सुकुमार किरण सी तुम कौन हो ?

सुन्दरी, कई दिन मैंने देखा, मुझे भ्रम हुआ कि यह स्वप्न है ! किन्तु नहीं ! अब मुझे विश्वास है कि भगवान ने करुणा की मूर्ति मेरे लिये भेजी है और इस वन्दी गृह में भी कोई अप्रकट इच्छा कौशल कर रही है ।" और फिर प्रेम द्रोह को पराजित कर देता है । अज्ञात कहता है तुम्हारे उदार और प्रेम ने मेरे विद्रोही हृदय को विजित कर लिया है ।" फिर वह अपने आपको वाजिरा के हवाले कर देता है । कारायण की प्रतिहिंसा उसे डरा नहीं सकती और वह उसे द्रन्द-युद्ध के लिये आह्वान करता है । उसकी वीरता के गुण के विषय में ऊपर कहा जा चुका है ।

वाजिरा के प्रेम शीतल छाया का विश्राम प्राप्त होता है । यह प्रेम शीतल विश्राम अज्ञात के मन के सारे द्रोह को धो डालती है और वह अपने पिता से भी क्षमा प्राप्ति के लिए ललचा उठता है । उसके यहाँ जब पुत्र उत्पन्न होता है तो वह पिता के स्नेह के मूल्य को समझता है । और तब वह बिम्बसार के चरणों पर गिरकर क्षमा-याचना करता है और सफल होता है ।

यह ऊपर संकेत किया जा चुका है कि अज्ञातशत्रु के साथ लेखक की सहानुभूति है । सामाजिक के मन में भी अज्ञातशत्रु के प्रति घृणा का इतना उद्रेक नहीं होता कि वह उसके पतन का दृश्य देखने को लालायित हो उठे । अज्ञात के चरित्र पर सबसे अधिक क्षोभ तभी होता है जब वह मुंह-दर-मुंह वासवी का अपमान करता है । लेखक ने उसे प्रत्यक्ष रूप से पिता के विरुद्ध खड़ा नहीं किया । सामाजिक के हृदय में अज्ञात के प्रति सहानुभूति भी जगती है क्योंकि वह जानता है कि उसके कंधे पर रखकर बन्दूक चलाई जा रही है । अज्ञात और छलना के प्रति जो क्षोभ सामाजिक के हृदय में उत्पन्न होता भी है, वह सब अन्त में जाकर देवदत्त में केन्द्रित हो जाता है अज्ञात को माँ ने धोखा दिया छलना को देवदत्त ने । इस प्रकार मगध के संघर्ष के मूल देवदत्त है ।

लेखक की अज्ञात के साथ सहानुभूति एक अन्य बात में भी लक्षित होती है । प्राचीन साहित्य में अज्ञातशत्रु पर पितृ हत्या का कलंक लगाया जाता है । किन्तु प्रसाद ने अज्ञात को इस कलंक से बचाने का प्रयत्न किया । इसका

एक कारण भी है। उत्तरी भारत में अज्ञातशत्रु ही 'इतिहास काल का प्रथम सम्राट्' हुआ और प्रसाद बुद्ध से भारत के इतिहास काल के आरम्भ होने में गर्व का अनुभव करते हैं क्योंकि उसने संसार में पशु-कीट-पतंग से लेकर इन्द्र-तक के साम्यवाद की शंख ध्वनि की थी।" प्रसाद के अज्ञात का चरित्र इतिहास सम्मत होते हुए भी उपरोक्त भारी कलंक से प्रायःमुक्त सा है। प्रसाद ने कथा प्रसंग में भी लिखा है—

किन्तु कई विद्वानों के मत से इसमें संदेश है कि अज्ञात ने वास्तव में पिता को बन्दी बनाया, या मार डाला था।" और यही प्रसाद ने अपना मत दिया है—“उस काल की घटनाओं को देखने से प्रतीत होता है कि बिम्बसार पर गौतम बुद्ध का अधिक प्रभाव पड़ा था। उसने अपने पुत्र का उद्धत-स्वभाव देखकर, जो कि गौतम के विरोधी देवदत्ता के प्रभाव में विशेष रहता था, स्वयं सिंहासन छोड़ दिया होगा। “पृ० १८

२—गौतम बुद्ध

‘अज्ञातशत्रु’ का व्यापक संघर्ष अकाल की भयंकर पीड़ा है और महात्मा बुद्ध करुणा के अमृत की घनी घटा। गौतम का व्यक्तित्व ‘अज्ञातशत्रु’ पर ही छाया हुआ नहीं है वरन् वे उस काल के भारतवर्ष के लोकनायक थे। ब्राह्मणों के हिंसापरक यज्ञों की क्रूरता से उद्विग्न जनता के हृदय में बुद्ध ने ही शान्ति का दीप जलाया। संघर्ष से पद-दलित ‘अज्ञातशत्रु’ के पात्रों को शान्ति और अभय का नव-जीवन देने वाली महात्मा बुद्ध की अमोघ शक्ति है।

सर्व प्रथम हमें महात्मा बुद्ध के दर्शन बिम्बसार के कलहपूर्ण घराने में होते हैं। वहाँ की लुटती हुई शान्ति को फिर से प्रतिष्ठित करने के लिए वे ही बिम्बसार को इस बात के लिए प्रेरणा देते हैं कि वह अज्ञात को युवराज बनाए और स्वयं सौंसारिक भगड़ों से दूर रहकर शान्तिमय जीवन व्यतीत करे पहला कार्य तो बिम्बसार ने किया किन्तु दूसरा कार्य वह अन्त के समीप तक न कर सका।

भगवान बुद्ध का जीवन करुणा की मूर्तिमान दिव्यशक्ति है। उनके जीवन

की महानता करुणा की महानता है। उग्र व्यक्तित्व को भी प्रेम से वश करने का सिद्धान्त अपनी दिव्यता में परम स्पृहणीय है। जब राजा बिम्बसार छलना के टेढ़े मार्ग पर व्यंग्य करता है तो महात्मा बुद्ध कहते हैं कि सब को विवेक से कार्य लेना चाहिए। वे कहते हैं—

“शीतल वाणी—मधुर व्यवहार—से क्या वन्यपशु भी वश में नहीं हो जाते ? राजन्, संसार भर के उपद्रवों का मूल व्यंग है। हृदय में जितना यह घुसता है उतनी कटार नहीं। वाक्संयम विश्व-मैत्री की पहली सीढ़ी है।”

पृ० ३१

आरम्भ में बिम्बसार के परिवार में शान्ति स्थापित करने का बुद्ध का प्रयत्न सफल नहीं होता है। इसका कारण यह कि वासवी को छोड़कर उस परिवार का प्रत्येक व्यक्ति अधिकार, लोलुपता और कूट-चातुरी में डूबा हुआ है महात्मा बुद्ध का शत्रु देवदत्त भी अज्ञात को अपने हाथ में कर बुद्ध को अपमानित करने का प्रयत्न करता है। किन्तु उसका प्रयत्न असफल होता है। अन्त में हम देखते हैं कि महात्मा बुद्ध के अभय-वरद-हस्त की छाया में बिम्बसार के जीवन की शान्ति के साथ ही उसका परिवार भी बुद्ध के आलोक में उज्ज्वल हो उठता है।

बिम्बसार के घर में ही नहीं, प्रसेनजित के परिवार में भी शान्ति और आनन्द का संचार करने वाली भी बुद्ध की ही पावन वाणी है। यह ध्यान में रखना चाहिए कि बिम्बसार और प्रसेनजित की पारिवारिक कलह को दूर करने में मल्लिका का भी पूरा-पूरा योग है जिसका उल्लेख आगे मल्लिका के चरित्रांकन में किया जाएगा। मल्लिका के कहने पर प्रसेनजित अपनी पत्नी तथा अपने पुत्र को क्षमा कर देता है। फिर भी वह अपने पुत्र को त्याज्य ही समझता है क्योंकि वह दासी-पुत्र है। महात्मा बुद्ध ही मल्लिका के प्रयत्नों को पूर्ण सफलता तक पहुँचाते हैं। वे कहते हैं—

“यह दम्भ तुम्हारा प्राचीन संस्कार है। क्यों राजन्, क्या दास-दासी मनुष्य नहीं हैं ?..... यह छोटे-बड़े का भेद क्या अभी इस संकीर्ण हृदय में इस तरह घुसा हुआ है कि निकल नहीं सकता ? क्या जीवन की वर्तमान स्थिति देखकर प्राचीन अन्ध विश्वासों को, जो न जाने किस कारण

होते आये हैं, तुम बदलने के लिए प्रस्तुत नहीं हो ? क्या इस क्षणिक भाव में तुम अपनी स्वतन्त्र सत्ता अनन्त काल तक बनाये रखोगे ? और भी, क्या इस आर्य पद्धति को तुम भूल गये हो कि पिता से पुत्र की गणना होती है ।”

पृ० १३१

इस कथन में मानव-मानव की समानता की सबल घोषणा की गई है । इसे प्रसेनजित अस्वीकार नहीं कर सका । बुद्ध का यह आदेश उसकी अपनी इच्छा के अनुकूल भी था । वह अपने पुत्र को युवराज बनाता है ।

उपर्युक्त कथन में मैंने आर्यपद्धति को रेखाङ्कित किया है । यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है जो प्रसाद की सांस्कृतिक-भावना की महत्ता प्रदर्शित होती है (कुछ विद्वानों का मत है कि महात्मा बुद्ध का चिन्तन आर्य-विरोधी था क्योंकि वह वेदों को अस्वीकार करता है । किन्तु कुछ अन्य विद्वानों ने यह प्रमाणित किया है कि बुद्ध का चिन्तन भी उपनिषदों से निश्चित रूप से प्रभावित है । फिर भी उसके आर्य विरोधी स्वरूप को प्रायः सभी स्वीकार करते हैं । किन्तु यहाँ प्रसाद महात्मा बुद्ध के मुख से प्रसेनजित को आर्य पद्धति के गौरव का स्मरण करा रहे हैं । प्रसाद ने भारतवर्ष के समस्त चिन्तन का सम्बद्ध रूप में विकसित होने वाली धारा के रूप में ग्रहण किया है ।

चाहे कोई व्यक्ति कितना ही महान क्यों न हो उनके शत्रु -- कम से कम उनके अपने काल में—बन ही जाते हैं । महात्मा बुद्ध के भी दो भयंकर शत्रु हैं । एक मागन्धी और दूसरा देवदत्त । मागांधी का पिता बुद्ध से उसके विवाह का प्रस्ताव रखता है । महात्मा बुद्ध उसे अस्वीकार करते हैं । मागांधी के रूप-गर्व को चोट लगती है और वह उनसे बदला लेने का प्रण करती है । उदयन को उनके विरुद्ध उकसाती है । पद्मावती को महात्मा बुद्ध की कल्याणमयी वाणी से सन्तोष होता है और उनके महिमामय मुख-मण्डल के दर्शन से शान्ति । उदयन मागन्धी की बातों में आकर महात्मा बुद्ध के दर्शन करती हुई पद्मावती पर लांछन लगाते हुए उसकी हत्या को प्रस्तुत होती है । जब उदयन गौतम को पद्मावती के ‘हृदय का विष’ और उसकी ‘वासना का निष्कर्ष’ कहता है तो वह उत्तर देती है—

“प्रभु ! स्वामी ! क्षमा हो ! यह मूर्च्छि मेरी वासना का विष नहीं है, किन्तु अमृत है। नाथ ! जिसके रूप पर आपकी भी असीम भक्ति है, उसी रमणीय-रत्न मागन्धी का भी जिन्होंने तिरस्कार किया था—शान्ति के सहचर करुणा के स्वामी, उन बुद्ध को माँस पिण्डों की कभी आवश्यकता नहीं” । अंत में मागन्धी का षडयन्त्र खुल जाता है और उदयन को अपने अपराध पर पश्चाताप होता है ।

महात्मा बुद्ध का दूसरा प्रबल विरोधी है देवदत्त ! महात्मा बुद्ध और देवदत्त का विरोध ही बिम्बसार के पारिवारिक विरोध में और आगे चलकर मगध और कोशल तथा कौशाम्बी के राजनैतिक विरोध में प्रकट होता है । देवदत्त छलना और अज्ञात को उत्तेजित कर बिम्बसार और वासवी को अप-दस्थ करा देता है । वासवी काशी प्रान्त के राजस्व को बिम्बसार की तुष्टि के लिये प्राप्त करने सा उद्योग करती है । इस पर अज्ञात कुपित होकर कोशल पर आक्रमण करता प्रसेनजित पराजित होता किन्तु मल्लिका के समझाने पर-कौशल को जीते बिना ही वापिस मगध लौट आता है । अज्ञात को शिक्षा देने के लिये कौशल और कौशाम्बी के राज्य मिलकर मगध पर आक्रमण करते हैं, इत्यादि । बिम्बसार और वासवी को अपदस्थ कराने में देवदत्त का मूल उद्देश्य या राजशक्ति का सहारा पाकर बुद्ध को नीचा दिखाना । इसके अतिरिक्त उसने चिम्बा को लेकर बुद्ध को कलंकित करना चाहा । जब आनन्द भगवान बुद्ध का ध्यान देवदत्त द्वारा खड़े किए गए उपद्रवों की ओर दिलाता है और यह कहता है कि उसे इनका फल मिलना ही चाहिए तो वे उत्तर देते हैं—

“यह मेरा काम नहीं—वेदना और संज्ञाओं का अनुभव करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है । हमें अपना कर्तव्य करना चाहिए, दूसरों के मलिन कर्मों को विचारने से भी चित्त पर मलिन छाया पड़ती है ।” और आगे—

“किन्तु सत्य सूर्य को कहीं चलनी से ठक लेगा ? इस क्षणिक प्रवाह में सब विलीन हो जायेंगे । मुझे अकार्य करने से क्या लाभ ?..... शुद्ध बुद्धि की प्रेरणा से सत्कर्म करते रहना चाहिए । दूसरों की ओर उदासीन हो जाना ही शत्रुता की पराकाष्ठा है । आनन्द दूसरों का अपकार सोचने से अपना

हृदय भी क्लुषित होता है ।” —पृ० ६६ उसी समय उन्हें वेहोश श्यामा दिखाई देती है । आनन्द घबड़ा जाता है और महात्मा बुद्ध को वहाँ से चलने के लिये कहता है । किन्तु वे कलंक की आशंका से अछूते रह कर उसे संघ में ले जाते हैं, लोग उन्हें बदनाम करने का भी प्रयत्न करते हैं, किन्तु श्यामा के होश में आ जाने पर सब चमत्कृत हो जाते हैं और महात्मा बुद्ध को महान आत्मा समझने लगते हैं ।

अन्त में सभी प्रयत्नों में विफल हो जाने पर देवदत्त स्वयं महात्मा बुद्ध के प्राण लेने के लिये आता है । लोग महात्मा बुद्ध से कहते हैं कि उसे रोकने का प्रयत्न करना चाहिये । किन्तु वे उपेक्षा भाव से उत्तर देते हैं कि देवदत्त मेरे समीप नहीं आ सकता । भला पाप की मलिन छाया पुण्य पर कैसे पड़ सकती है । और ऐसा ही होता भी है । देवदत्त मार्ग में जल पीने के लिए नदी में उतरता है और वहीं अदृश्य हो जाता है । एक नागरिक के मुख से गौतम का वर्णन सुनिए—

“आश्चर्य ! गौतम की अमोघ शक्ति है । भाई, इतना त्याग तो आज तक देखा नहीं गया । केवल पर-दुःख-कातरता ने किस प्राणी से राज्य छुड़वाया है । अहा, वह शान्त मुख मण्डल, स्निग्ध गंभीर दृष्टि, किस को नहीं आकर्षित करती । कैसा विलक्षण प्रभाव है ।”

पृ० १३४

मागंधी या श्यामा महात्मा बुद्ध से अपने तिरस्कार का बदला लेने की प्रतिज्ञा करती है । उन पर भीषण कलंक लगाती है । किन्तु गौतम उसका भी उद्धार करते हैं । मुझे तो सारे नाटक में मागन्धी का गौतम द्वारा उद्धार सबसे अधिक प्रिय लगा । यह ‘अज्ञातशत्रु’ का एक चमत्कार है—कला की दृष्टि से भी, भाव की दृष्टि से भी और विचार की दृष्टि से भी । गौतम के आने पर मागन्धी उन्हें प्रणाम करती है, वे उसके सर पर करुणा का हाथ रखते हैं । मागन्धी आनन्द विभोर होकर कहती—

“प्रभु आ गए ! इस प्यासे हृदय की तृष्णा मिटाने को अमृत—स्रोत ने अपनी गति परिवर्तित की—इस मरु देश में पदार्पण किया !” मागन्धी को अपने रूप के गर्व का घातक परिणाम देखकर अत्यन्त पीड़ा होती है । गौतम उसे उपदेश देते हैं—

“क्षणिक विश्व का यह कौतुक है देवि ! अब तुम अग्नि में तपे हुये हेम के समान शुद्ध हो गई हो । विश्व के कल्याण में अग्रसर हो । यदि एक भी रोते हुए हृदय को तुमने हँसा दिया तो सहस्रों स्वर्ग तुम्हारे अन्तर में विकसित होंगे.....।” पृ० १३७ मागन्धी गद्गद् हो गई । उसे विश्वास हो गया कि मैंने अपने प्रियतम को पा लिया । महात्मा बुद्ध के कहने पर भी वह इस मधुर विश्वास के सुख को—जो उसके जीवन का सर्वस्व है,—नहीं त्यागती । महात्मा बुद्ध उससे आम माँग कर खाते हैं और उसके इस अधि-कार की स्वीकृति देते हैं । ऐसा प्रतीत होता है मानो कृष्ण केले के छिलके खा रहे हों और राम भीलनी के जूटे बेर । इसके पश्चात् गौतम मागन्धी को अपने चरणों में स्थान देते हैं ।

एक प्रश्न उठाया जाता है । क्या बुद्ध के समान संसार का त्याग कर देना कायरता वश संघर्ष से पलायन नहीं है । प्रसाद इस आक्षेप से परिचित है और इसका उत्तर भी देते हैं—नहीं प्रत्यक्ष दिखलाते भी हैं । भगवान् गौतम राजा बिम्बसार से कहते हैं—

“राजन्, शुद्ध बुद्धि तो सदैव निर्लिप्त रहती है । केवल साक्षी रूप से वह सब दृश्य देखती है । तब भी, इन साँसारिक भगड़ों में उसका उद्देश्य होता है कि न्याय का पक्ष विजयी हो—यही न्याय का समर्थन है । तटस्थ की यही शुभेच्छा सत्व से प्रेरित होकर समस्त सदाचारों की नींव विश्व में स्थापित करती है । यदि वह ऐसा न करे तो अप्रत्यक्ष रूप से अन्याय का समर्थन हो जाता है—हम विरक्तों को भी इसीलिये राम दर्शन की आवश्यकता हो जाती है ।” पृ० ३०

मल्लिका के चरित्र में भी प्रसाद ने विरक्ति में प्रगति और विश्वकल्याण की साधना का समन्वय दिखाया है । इसे आगे पल्लवित किया जाएगा ।

③ ३—बिम्बसार

अज्ञात का पिता बिम्बसार महात्मा बुद्ध से विशेष प्रभावित था । किन्तु छुलना को देवदत्त के प्रभाव के कारण बुद्ध के प्रति अनुराग या श्रद्धा नहीं थी । इसीलिए वह अज्ञात को युवराज बनाने के लिए बिम्बसार को बाध्य करती है ।

बिम्बसार भी दुर्बल व्यक्तित्व का व्यक्ति है। वह स्वयं कहता है—

“मैं अच्छी तरह अपने को जानता हूँ वासवी !”

वासवी—क्या ?

बिम्बसार—कि मैं मनुष्य हूँ और इन मायाविनी स्त्रियों के हाथ का खिलौना हूँ ।”

पृ० १४४

किन्तु यह चेतना उसे बहुत देर में होती है जब उसका अन्त निकट आ जाता है। प्रथम अङ्क के द्वितीय दृश्य में ही छलना बिम्बसार के पास आती है और उससे अधिकारपूर्ण भाषा में कहती है—

“मैं उत्पात रोकना चाहती हूँ। आपको कुलीक के युवराज्याभिषेक की घोषणा आज ही करनी पड़ेगी ।”

बिम्बसार में छलना के इस दृष्ट को अस्वीकार करने की शक्ति नहीं है। और फिर जब बुद्ध भी उसे अज्ञात को युवराज बनाने के लिए कहते हैं तो बिम्बसार को विवश होना ही पड़ता है। और वह अज्ञात को युवराज बना देता है।

बिम्बसार के चरित्र की दूसरी विशेषता उसकी अधिकार-लोलुपता में है। जब महात्मा बुद्ध उसे यह कहते हैं कि वह अज्ञात को युवराज बनाकर स्वयं भोगों से विश्राम ले तो वह बीच में ही उनकी बात काटकर बोल उठता है—

“योग्यता होनी चाहिए महाराज ! यह बड़ा गुरुत्तर कार्य है। नवीन रक्त राज्य श्री को सदैव तलवार के दर्पण में देखना चाहता ।”

पृ० ३२ ।

वह विवश होकर अज्ञात को युवराज बना तो देता है किन्तु वह अपने अधिकारों को भूलता नहीं है। वास्तव में उसके भीतर तीव्र अन्तर्द्वन्द्व भङ्गकता दिखाई देता है। वह पुत्र के विषय में यह कहता है—

“संसारी को त्याग, तितिक्षा या विराग होने के लिये पहला और सहज साधन है। पुत्र को समस्त अधिकार देकर वीतराग हो जाने से असन्तोष नहीं जाता; क्योंकि मनुष्य अपनी ही आत्मा का भोग उसे भी समझता है ।”

इस पर वासवी कहती है—

“मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपको अधिकार से बंचित होने का दुख नहीं है।”

बिम्बसार—दुख तो नहीं, देवी ! फिर भी इस कुणीक के व्यवहार से अपने अधिकार का ध्यान हो जाता है। तुम्हें विश्वास हो या न हो, किन्तु कभी-कभी याचकों का लौट जाना मेरी वेदना का कारण होता है।” पृ० ३६

इन कथनों से बिम्बसार के हृदय का अधिकार का मोह स्पष्ट ध्वनित होता है। उसके इस मोह को तुष्ट करने के लिए ही वासवी उसके लिए काशी के राज्य का कर प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करती है। वासवी के इस प्रस्ताव को सुनकर वह कहता है—

“मुझे फिर उन्हीं भगड़ों में पड़ना होगा देवी, जिन्हें अभी छोड़ आया।”

स्पष्टतः उसकी वाणी में शक्ति नहीं है। उसकी इच्छा के प्रतिकूल पतिव्रता वासवी काशी के कर को प्राप्त करने का उद्योग कर कभी भी इतना उत्पात न मचवाती। आगे चलकर जब छलना अज्ञात के आक्रमण का समाचार सुनाती है तो वह सहसा पूछ उठता है—

“युद्ध में क्या हुआ ? (मुँह फिराकर)—अथवा मुझे क्या ?” यहाँ भी उसके हृदय की दुविधा स्पष्ट होती है। इसके अन्तर्द्वन्द्व के विरोधी भाव हैं—अधिकार का मोह और वानप्रस्थ आश्रम की मर्यादा। अधिकार का मोह उसे राज्य-सत्ता की ओर प्रेरित करता है, अज्ञात के धन पर निर्वाह करने की इजाजत नहीं देता, और राज्यों के पारस्परिक संघर्ष के ज्ञान की उत्सुकता उत्पन्न करता है। वानप्रस्थ आश्रम की मर्यादा उसे राज-शक्ति, तथा अन्य वासनाओं से दूर रहने का अनुरोध करती है। इस भीतरी संघर्ष का स्पष्ट प्रतिफलन उपर्युक्त वाक्य में हुआ है। भावों का यह अन्तर्विरोध उसके जीवन के अन्त तक रहता है, केवल मृत्यु के क्षण में ही उसे पूर्ण शान्ति प्राप्त होती है। नाटक के अन्तिम दृश्य में बिम्बसार के ये वाक्य उसके अधिकार के आकर्षण को स्पष्ट कर देते हैं:—

“यदि मैं सम्राट न होकर किसी विनम्रलता के कोमल किसलयों के भुरमुट में एक अघखिला फूल होता और संसार की दृष्टि मुझ पर न पड़ती-पवन की

किसी लहर को सुरभित करके धीरे से उस थाले में चू पड़ता-तो इतना भीषण चीत्कार इस विश्व में न मचता । उस अस्तित्व को अनस्तित्व के साथ मिला कर कितना सुखी होता ।”

पृ० १४२ ।

राजा स्वयं इस बात से अभिज्ञ है कि उसी के कारण इतना उत्पात हुआ किन्तु यहां भी एक बात बड़ी स्पष्ट है जो बुद्ध के प्रभाव की द्योतक है । फूल बनकर भी उसके हृदय में पवन की लहर को सुरभित करके झड़ने की कामना है, वातावरण को सुगन्धित बनाने की इच्छा है ।

बिम्बसार का एक अन्य गुण है दूसरों के हित की भावना । यह सत्य है कि परोपकार की यह भावना भव्यतम और उदारतम नहीं है किन्तु फिर भी उसके चरित्र की इस विशेषता से इन्कार नहीं किया जा सकता । जब वह और वासवी अपने पद और प्रतिष्ठा को छोड़कर वानप्रस्थी का सा जीवन व्यतीत कर रहे हैं तो वहाँ कुछ भिन्न आते हैं । राजा वासवी से कहता है इन्हें कुछ दो और वासवी उन्हें अपने सोने के कंगन उतार कर देती है । इस प्रकार उस तिरस्कार और अन्तर्द्वन्द की अवस्था में वह भिन्नताओं के प्रति अपने कर्तव्य में जागरूक है । ऊपर फूल बनकर भी पवन को सुरभित करने की बात कही गई है ।

बिम्बसार के व्यक्तित्व की एक अन्य विशेषता है उसकी चिन्तन शीलता । सर्व प्रथम वह वासवी से यह प्रश्न पूछता है:—

“देवी, तुम समझती हो कि मनुष्य के लिए एक पुत्र का होना क्यों इतना आवश्यक समझा गया है ?”

पृ० ३६ ।

और फिर स्वयं ही उसका उत्तर भी देता है कि संसारी को विरागी होने के लिये यह पहला साधन है । इसी प्रकार आगे चलकर शुक्ल पद्म और कृष्णपद्म के चक्र पर गम्भीर विचार करता दिखाई देता है । (पृ० ८६) और अन्त में मानव की दुर्बलताओं पर खेद प्रकट करता है:—

“मनुष्य हृदय भी एक रहस्य है, एक पहेली है । जिस पर क्रोध से भैरव हँकार करता है, उसी पर स्नेह का अभिषेक करने के लिए प्रस्तुत रहता है ।

उन्माद । और क्या ? मनुष्य क्या पागल विश्व के शासन से अलग होकर कभी निश्चेष्टता नहीं ग्रहण कर सकता ? हाय रे मानव ! क्यों उतनी दुरभिलाषाएँ बिजली की तरह तू अपने हृदय में आलोकित करता है ? क्या निर्मल-ज्योति तारागण की मधुर किरणों के सदृश सदृशि का विकास तुझे नहीं रुचता । भयानक भावुकता और उद्वेगजनक अन्तःकरण लेकर क्यों तू व्यग्र हो रहा है ? जीवन की शान्तिमयी सच्ची परिस्थिति को छोड़कर व्यर्थ के अभिमान में तू कब तक पड़ा रहेगा ?”

पृ० १४२ ।

बिम्बसार का आरंभिक चिन्तन निराशावाद से भरा हुआ है; संसार में सर्वत्र बबंडर के दर्शन करता है और उसमें पलायन की प्रवृत्ति का भी गहरा रंग है । वहां उसका चिंतन उसके जीवन का अनुगामी अतः अनुकूल है । वह सत्य चिन्तन के अनुसार—जिसका उपदेश उसे गौतम आरम्भ में ही देता है—अपने जीवन को विकसित करने का प्रयत्न नहीं करता वरन् अपने जीवन की यथार्थ दशा को ही चिन्तन में प्रतिबिम्बित करता है । वहां उसके अधि-कार के मोह की भावना वानप्रस्थ की त्यागमय मर्यादा की अपेक्षा अधिक प्रबल है । तब वह अपने को राजा समझता है, मनुष्य नहीं । धीरे-धीरे अधि-कार भावना दबती जाती है और वानप्रस्थ की मर्यादा उसके जीवन और चिन्तन में अधिक मुखर होने लगती है । यह ठीक है कि आरम्भ में भी जब जीवक प्रवेश होकर महाराज की जय हो कहता है तब भी वह उसे यही कहता है—

“जीवक यह कैसा परिहास ? यह सम्बोधन अब क्यों ? यहाँ तुम कैसे आए ?”

पृ० ३७ ।

और अन्त में भी जब जीवक ‘सम्राट’ कहता है, तो वह उत्तर देता है:—

“चुप ! यदि मेरा नाम न जानते हो तो मनुष्य कह कर पुकारो । वह भयानक सम्बोधन मुझे न चाहिये ।”

पृ० १४२ ।

प्रथम और द्वितीय दोनों उत्तरों में भिन्नता है । और यह भिन्नता है चिन्तन की और शक्ति की । यद्यपि आरम्भ में भी वह महाराज के संबोधन को अपना परिहास समझता है, किन्तु उसके अन्य व्यापार ऐसे हैं जो उसके मन की शिथिलता को व्यक्त कर ही देते हैं । किन्तु द्वितीय उत्तर में वह

मनुष्य बन गया है। इसीलिये मैंने ऊपर कहा है कि बिम्बसार धीरे-धीरे राजा से मनुष्य बनता जाता है और अन्त में उसके कथन और व्यापारों में साम-रस्य आ जाता है। वह छलना और अज्ञात दोनों को क्षमाकर शान्ति में अन्तिम प्रस्थान करता है।

४—प्रसेनजित

मनोविज्ञान का एक सिद्धान्त है कि हम जिस व्यक्ति से हृदय में आतंकित होते हैं, अपने व्यवहार में हम उसके प्रति उतने ही उग्र होते हैं। प्रसेनजित के आरम्भिक रूप में हमें प्रसेनजित के चरित्र में मनोविज्ञान के इस सिद्धान्त का दर्शन होता है। उसका व्यक्तित्व दुर्बल ही नहीं भीरु भी है। वह बन्धुल के शौर्य को देखकर आतंकित होता है। अपने पुत्र विरुद्धक के अपराध के लिए ऐसी कठोर सजा देता है जो अनुचित है। इसका कारण भी यही है कि वह उससे डरता है।

जब सुदत्त प्रसेनजित को अज्ञात के उद्धत कार्य की सूचना देता है वह आचर्य में डूब जाता है। विरुद्धक अज्ञात का पक्ष लेता है। वह कहता है—

‘पुत्र यदि पिता से अपना अधिकार मांगे तो उसमें दोष ही क्या है?’

पृ० ५१।

इसको सुनकर राजा अत्यन्त कुपित होता है और उसे युवराज पद से हटा देता है। सुदत्त भी कहता है “दयानिधे ! बालक का अपराध मार्जनीय है।” और अमात्य तो स्पष्ट शब्दों में इसे राजा की दुर्बलता का द्योतक मानता है—

“किसी दूसरे के पुत्र का कलंकित कर्म सुनकर श्रीमान् उत्तेजित हो अपने पुत्र को दण्ड दें यह तो श्रीमान् की प्रत्यक्ष निर्बलता है।”

किन्तु राजा उसे चुप रहने का आदेश देता है। अतः स्पष्ट है कि प्रसेन-जित का व्यक्तित्व दुर्बल, भीरु और अधिकार-लोलुप हैं। उसकी अधिकार-लोलुपता अत्यन्त कुत्सित रूप वहाँ धारण करती है जब वह बन्धुल जैसे स्वामिभक्ति, देशभक्त और पराक्रमी सेनापति को आतंकित होकर छल पूर्वक

मरवा डालता है । पाठक का मन प्रसेनजित के लिए घृणा से भर जाता है ।

प्रसेनजित और बिम्बसार के व्यक्तित्व में पर्याप्त समानता होते भी महान् अन्तर यह है कि प्रसेनजित जैसी पापमयी कुटिलता बिम्बसार में बिल्कुल नहीं मिलती । किन्तु प्रसाद को बिम्बसार और प्रसेनजित दोनों के साथ सहा-नुभूति है । वह अन्त में दोनों का उत्कर्ष दिखाता है ।

उपरोक्त नीच कर्म करने के पश्चात् ही प्रसेनजित अपने को संभालता है । वह तुरन्त ही मल्लिका के पास आता है और निवेदन करता है:—

मल्लिका देवी, मैं क्षमा माँगने आया हूँ ।

× × × ×

“मुझे धिक्कार दो—मुझे शाप दो—मल्लिका ! तुम्हारे मुखमण्डल पर तो ईर्ष्या और प्रतिहिंसा का चिह्न भी नहीं है । जो तुम्हारी इच्छा हो वह कहो मैं उसे पूरा करूँगा—”

पृ० ८५ ।

और इसके बाद प्रसेनजित के जीवन में एक नया अध्याय आरम्भ होता है । किन्तु उसे अपनी कुटिलता का फल भी शीघ्र मिलता है ।

जब अजातशत्रु कोशल पर आक्रमण करता है तो प्रसेनजित की सेना उत्साह के साथ युद्ध नहीं करती । फलस्वरूप प्रसेनजित पराजित होता है और बुरी तरह घायल होता है । और सबसे चमत्कार पूर्ण बात तो यह है कि उसकी रक्षा मल्लिका ही करती है । यह उसके जीवन के लिये एक दूसरा धक्का था । और तब वह जिन शब्दों में मल्लिका की महिमा का वर्णन करता है वहाँ लेखक और सामाजिक दोनों के हृदय उसके साथ बोलते हैं । यहाँ उसके चरित्र का साधारणीकरण होता है । अन्त में मल्लिका की प्रार्थना और महात्मा बुद्ध के समझाने पर वह अपनी त्यक्ता पत्नी महामाया को क्षमा करके और त्याज्यपुत्र विरुद्धक को पुनः युवराज बनाकर अपने चरित्र को आलोकित कर लेता है ।

५—देवदत्त

देवदत्त आधुनिक युग के पाखण्डी सन्यासियों की बौद्धकालीन प्रतिकृति

है । वह स्वतन्त्र संघ स्थापित करना चाहता है और महात्मा बुद्ध के बढ़ते हुए यश और बल से ईर्ष्या करता है । बुद्ध को नीचा दिखाने के लिये वह राजशक्ति की सहायता प्राप्त करने का उद्योग करता है । जिसके फलस्वरूप बिम्बसार के घर में कौटुम्बिक विषमता व्याप्त हो जाती है जो आगे चलकर अपने भीषण परिणाम दिखाती है । देवदत्त ही छलना को बहका कर अज्ञात को सिंहासन प्राप्त कराने में सफल होता है । जीवक के शब्दों में देवदत्त को “महात्मा बुद्ध की प्रतिद्वन्द्विता ने अन्धा कर दिया है ।”

देवदत्त पाखण्डी ही नहीं धूर्त भी है । अज्ञात की राज सभा में वह परिषद के सभी सदस्यों को अपनी लच्छेदार बातों में उलझा कर अपनी सभी बातें मनवा लेता है । इसके अतिरिक्त जब अज्ञात प्रथम युद्ध की भीषणता देखकर दूसरे युद्ध के लिये प्रस्तुत होने में आनाकानी करता है तब भी देवदत्त ही उसे फिर युद्ध करने के लिए उत्साहित करता है ।

“किन्तु अब बहुत दूर तक बढ़ आए, लौटने का समय नहीं है । उधर देखो, कौशल और कौशाम्बी की सेना मगध पर गरजती चली आ रही है ।”

पृ० १०६ ।

यहीं हमें देवदत्त की नीचता का भी परिचय चलता है जब वह अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए—अज्ञात को युद्ध के लिए कटिबद्ध करने के लिए अपने शिष्य समुद्रदत्त की निन्दा करता है—

“समुद्रदत्त का मारा जाना आपको अधीर कर रहा है, किन्तु क्या समुद्रदत्त के ही भरोसे आप सम्राट् बने थे ? वह निर्बोध विलासी उसका ऐसा परिणाम होना ही था । पौरुष करने वाले को अपने बल पर विश्वास करना चाहिए ।” पृ० १०७

वास्तव में तो देवदत्त यह सब करता है गौतम का प्रभाव कम करने के लिए । किन्तु जब अज्ञात युद्ध में पराजित होकर बन्दी के रूप में विदेश ले जाया जाता है, तब छलना को देवदत्त के कपट रूप का परिचय प्राप्त होता है । छलना इन शब्दों में उसे फटकारती है—

“धूर्त ! तेरी प्रवंचना से मैं इस दशा को प्राप्त हुई, पुत्र बन्दी होकर विदेश को चला गया और पति को मैंने स्वयं बन्दी बनाया । पाखंड तूने ही

यह चक्र रचा है ।

+ + + +

पाखंड ! जब तूने धर्म के नाम पर उत्तेजित करके मुझे कुशिक्षा दी, तब मैं भूल में थी । गौतम को कलंकित करने के लिए कौन श्रावस्ती गया था ? और किसने मतवाला हाथी दौड़ा कर उनके प्राण लेने की चेष्टा की थी ? ओह ! मैं किस भ्रान्ति में थी ! जी चाहता है, कि इस नरपिशाच मूर्ति को अभी मिट्टी में मिला दूँ ।' पृ० १०६

और वह उसे बन्दी बना लेती है । वासवी उसे मुक्त कर देती है । किन्तु देवदत्त उस मिट्टी का नहीं बना है कि वह उस उपकार से कुछ चौंके या जीवन को सुधारने का प्रयत्न करे । अन्त में वह गौतम के प्राण लेने के लिए उसके पास जाता है । गौतम उसके रोकने का कोई उपाय नहीं करते । वह स्वयं ही नदी में श्राकस्मिक ढङ्ग से लुप्त होता है । प्रसाद ने इस घटना का वर्णन दो नागरिकों द्वारा करा के गौतम के लोकनायकत्व की ओर तथा देवदत्त के प्रति तत्कालीन जनता की घोर घृणा की ओर संकेत किया है ।

६— विरुद्धक

प्रसेनजित का कुमार विरुद्धक व्यक्तित्व का उद्धत और स्वभाव का क्रूर है । वह परिस्थितियों पर विजयी नहीं होता वरन् परिस्थितियां उसे अपने हाथों में खिलौने के समान खिलाती हैं । इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वह पारे-स्थितियों को जीतने का प्रयत्न ही नहीं करता । किन्तु न तो उसका प्रयत्न रमणीय है और न ही उसका फल वांछित । प्रयत्न करना एक बात है और उसे उचित दिशा की ओर प्रवाहित करना दूसरी बात । जब प्रयत्न उचित दिशा की ओर प्रवाहित होता है, तभी उसका फल मधुर और उसका कर्त्ता महान कहा जाता है ।

विरुद्धक के हमें तीन रूप मिलते हैं—

१—युवराज का रूप,

२—प्रेमी का रूप,

और ३—डाकू का रूप ।

अज्ञातशत्रु के भी हमें तीन रूप मिलते हैं—युवराज का रूप, सम्राट का रूप और प्रेमी का रूप। अज्ञात और विरुद्ध में महान भेद है अज्ञात में डाकू के समान नीच रूप नहीं मिलता। द्वितीय इनके प्रेमी के रूप में भी भेद है। हाँ युवराज के रूप में अवश्य समानता दिखाई देती।

युवराज के रूप में विरुद्ध उग्र स्वभाव का है। उसके उद्धत स्वभाव के कारण ही वह युवराज के पद से हटा दिया जाता है। विरुद्ध में प्रेमी के दो रूप हैं—मल्लिका का प्रेमी और श्यामा का प्रेमी। मल्लिका के प्रेम में भी विरुद्ध को असफलता मिली। उसका कारण यह था कि उसके पिता ने उसका विवाह मल्लिका से नहीं होने दिया। राजसभा में उद्धत होने का एक कारण विरुद्ध की प्रेम विषयक यह असफलता ही है। जब से उसका पिता उसके प्रेम को विवाह में फलीभूत होने का विरोध करता है, तभी से वह उसके विरुद्ध हो उठता है। वह स्वयं मल्लिका से कहता है—

“किंतु मल्लिका ! अतीत में तुम्हारे ही लिए मेरा वर्तमान बिगड़ा। पिता ने जब तुमसे मेरा ब्याह करना अस्वीकार किया, उसी समय से मैं पिता के विरुद्ध हुआ और इस विरोध का यह परिणाम हुआ।” पृ० ११६

एक तो प्रेम की असफलता द्वितीय पिता द्वारा अधिकार का छीन लिया जाना, बस विरुद्ध का दिमाग जल उठा। वह निराशा और दुःख में डूब गया। अपने आपको ‘कँटीली भाड़ी’ और कोशल का कांटा मान बैठता है। उसी समय उसकी माता शक्तिमती उसे उत्साहित करती है। जब विरुद्ध अपने को ‘तिरस्कृत युवक मात्र’ कहता है तो वह उसे इन शब्दों में फटकारती है :—

“देखो, तुम मेरी सन्तान होकर मेरे सामने ऐसी पोच बात मत कहो। दासी की पुत्री होकर भी मैं राजरानी बनी और हठ से मैंने इस पद को ग्रहण किया, और तुम राजा के पुत्र होकर भी इतने निस्तेज और डरपोक होगे, यह कभी मैंने स्वप्न में भी न सोचा था। मानव अपनी इच्छा शक्ति से और पौरुष से ही कुछ होता है।..... पुरुषार्थ करो। इस पृथ्वी पर जियो तो कुछ होकर जियो, नहीं तो मेरे दूध का अपमान कराने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं।” पृ० ५६

अपनी माँ की यह उग्र फटकार ही विरुद्धक के आगे के जीवन को बहुत दूर तक संचालित करती दिखाई देती है। माँ को वह यह उत्तर देता है :—

‘बस माँ !’ अब कुछ न कहो। आज से प्रतिशोध लेना मेरा कर्तव्य और जीवन का लक्ष्य होगा। ... आशीर्वाद दो कि इस क्रूर परीक्षा में उत्तीर्ण होऊँ।

“रानी—(सिर पर हाथ फेर कर) मेरे बच्चे, ऐसा ही हो।” पृ० ५६-५७

यहाँ विरुद्धक के चरित्र की दुर्बलता स्पष्ट दिखाई देती है। वह स्वयं यह सोचने का प्रयत्न नहीं करता कि मेरी माँ का कथन कहाँ तक सही है। जिस प्रकार अज्ञात को उसकी माँ छलना कुमार्ग की ओर प्रवृत्त करती है उसी प्रकार शक्तिमती इसे भी। इसकी माँ इसे केवल एक शिक्षा देती है और वह है महान बनने की। वह इसे यह नहीं बताती कि महान् कैसे बनना होगा। उसका सन्देश साध्य का सन्देश है साधन का नहीं। साधन विरुद्धक स्वयं जुटाता है किन्तु वे सब क्षुद्र एवं त्याज्य होते हैं।

इसके पश्चात् ही विरुद्धक का डाकू का रूप आरंभ होता है। वह काशी में शैलेन्द्र नाम के डाकू के रूप में वहाँ की जनता को आतंकित कर डालता है। वहीं श्यामा इसकी ओर आकर्षित होती है। पहले तो यह वेश्या की भयंकरता की बात कह कर उसे टालना चाहता है, अन्त में उसके साथ हाथ में हाथ मिलाकर चल देता है। डाकू के रूप में वह काशी के ‘निरीह मनुष्यों का वध करता है। छल से बन्धुल की हत्या करता है। पकड़े जाने पर श्यामा समुद्रदत्त को फँसा कर इसे बचा लेती है। इस प्रकार समुद्र की हत्या वा कारण भी यही बनता है।

विरुद्धक के युवराज प्रेमी और डाकू प्रेमी के रूपों में भेद है। युवराज के रूप में वह अपने जीवन के ‘विकास सूत्र को एक कोमल कुसुम से बँधा हुआ’ पाता है और इसीलिए इतना भयंकर अपमान होने पर भी वह कोशल की सीमा छोड़ने में अपने को असमर्थ पाता है। डाकू के रूप में वह जिस श्यामा के साथ आनन्द भोग करता है, उसी का गला घोट कर वह उससे दूर भाग जाता है। बहुत देर तक श्यामा के रूप सागर में डूबे रहने के पश्चात् उसे इस बात का ज्ञान होता है कि वह अपने लक्ष्य से बहुत दूर होता जा रहा

है। और वह श्यामा से कोमल कुसुम को अपने मार्ग से हटाने का प्रयत्न करता है। यहाँ उसकी क्रूरता की भीषणता विलक्षण है।

इसके पश्चात् हमें विरुद्धक का देश द्रोही और पितृ-द्रोही रूप दिखाई देता है। वह अजातशत्रु से मिलकर अपने पिता के विरुद्ध कौशाम्बी की सेना पर आक्रमण कर देता है। युद्ध में घायल होता है। मल्लिका उसकी सेवा करके उसके प्राणों की रक्षा करती है। वह समझता है कि संभवतः मल्लिका का हृदय विचलित हो गया है। जब वह अपनी इस शंका को मल्लिका पर प्रकट करता है, वह अत्यन्त उत्तेजित हो उठती है। जब विरुद्धक उससे यह कहता है कि तुम्हारे लिए ही मेरा जीवन बिगड़ा है तो वह उत्तर देती है—

“उसके लिए मैं कृतज्ञ नहीं हो सकती। राजकुमार ! तुम्हारा कलंकी जीवन भी बचाना मैंने अपना धर्म समझा। और यह मेरी विश्वमैत्री की परीक्षा थी। जब इसमें मैं उत्तीर्ण होगई तब मुझे अपने पर विश्वास हुआ। विरुद्धक, तुम्हारा रक्त-कलुषित हाथ मैं छू भी नहीं सकती। तुमने कपिल वस्तु के निरीह प्राणियों का, किसी की भूल पर, निर्दयता से बध किया; तुमने पिता से विद्रोह किया, विश्वासघात किया; एक वीर को छल से मार डाला और अपने देश के, जन्मभूमि के विरुद्ध अस्त्र ग्रहण किया। तुम्हारे ऐसा नीच और कौन होगा ? किन्तु यह जानकर भी मैं तुम्हें रणक्षेत्र से सेवा के लिए उठा लाई।” पृ० १२०

इस कथन में विरुद्धक का सारा चरित्र स्पष्ट होता है। किन्तु अभी भी एक भयंकर अभियोग बाकी है जो श्यामा आकर लगाती है—

‘और भी एक भयानक अभियोग है—इस नर-राक्षस पर’ इसने एक विश्वास करने वाली स्त्री पर अत्याचार किया है, उसकी हत्या की है। शैलेन्द्र ?” पृ० १२०

मल्लिका की ओजभरी वाणी पहले ही उसके हृदय पर एक करारी चोट पहुँचाती है। श्यामा का अभियोग उसे अपने चरित्र की यथार्थ भयंकरता के समीप लाकर खड़ा कर देता है। इस धक्के से उसकी सोई हुई चेतना जाग उठती है। वह पश्चाताप करता है और श्यामा को स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। किन्तु श्यामा मल्लिका की कुटिया पर ही रहना स्वीकार

करती है। मल्लिका उसे कुटिया में छोड़कर स्वयं विरुद्ध के अपराध क्षमा कराने महाराज प्रसेनजित के पास ले जाती है। किन्तु प्रसेनजित कहता है कि वह राष्ट्र का द्रोही है, उसे क्षमा नहीं मिल सकती। इस पर वह उत्तर देती है—

“राजन्, विद्रोही बनाने का कारण भी आप ही हैं। बनाने पर विरुद्ध राष्ट्र का एक सच्चा शुभचिंतक हो सकता था। और उससे क्या, मैं तो स्वीकार करा चुकी हूँ कि भयानक अपराध भी मार्जनीय होते हैं।” पृ० १२६-३०

विरुद्ध भी अत्यन्त विनीत वाणी में क्षमा याचना करता है। व्यवस्था के विरुद्ध भी प्रसेनजित उसे क्षमा कर देता है। किन्तु फिर भी वह उसे ‘त्याज्य पुत्र’ ही कहता है। तभी गौतम प्रवेश करते हैं और उससे पूछते हैं कि वह विरुद्ध को त्याज्य पुत्र क्यों कहता है। वह उत्तर देता है—‘क्योंकि यह दासी-पुत्र है। इस पर भगवान गौतम मानव-मानव के साम्य की घोषणा करते हुए कहते हैं—

“राजन्, सावधान हो, उस अपनी सुयोग्य शक्ति को स्वयं कुण्ठित न बनाओ। यद्यपि इसने कपिलवस्तु में निरीह प्राणियों का बध करके बड़ा अत्याचार किया है और कारणवश, क्रूरता भी यह करने लगा था, किन्तु अब इसका हृदय, देवी मल्लिका की कृपा से, शुद्ध होगया है। इसे तुम युवराज बनाओ।” पृ० १३१

प्रसेनजित उसे क्षमाकर युवराज बना देता है। इसमें उसकी भी प्रसन्नता है। अन्त में विरुद्ध वाजिरा से भी क्षमा मांगता है। इस प्रकार एक पापी का उद्धार होता है।

(नारी पात्र)

५ १—वासवी

वासवी के हमें तीन रूप प्राप्त होते हैं। प्रथम पत्नी का रूप, द्वितीय माता का रूप और तृतीय सपत्नी का रूप। और इस विषय में दो मत नहीं हो सकते कि वह अपने तीनों रूपों में आदर्श रमणी है। वह महात्मा बुद्ध के चरित्र से भी विशेष प्रभावित है और एक स्थान पर तो उसके आदर्श—‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ की तीव्र कामना करती दिखाई देती है।

बिम्बसार के राज्य-त्याग के पश्चात् वह अपने पति की सेवा में रहने के लिए केवल एक उपवन में रहना स्वीकार करती है। एक ओर तो छलना है जो हठपूर्वक पति को सिंहासन से उतार कर उसे बन्दी बनाती है। और दूसरी ओर वासवी है जो इस दशा में भी पति की सेवा में रहकर अपने को धन्य समझ रही है। वह कहती है :—

“भगवान् ! हम लोगों के लिए तो एक छोटा सा उपवन पर्याप्त है। मैं वहीं नाथ के साथ रह कर सेवा कर सकूंगी।” पृ० ३२

पति के सत्ता-न्युत हो जाने पर यह सदैव उसकी प्रसन्नता और मनोरंजन का प्रयत्न करती रहती है। इसका स्वभाव भी पति के स्वभाव के समान ही चिन्तनशील है। किन्तु आरम्भ से ही हमें उसके जीवन में चिन्तन और व्यवहार का सामंजस्य मिलता है। पति के कहने पर यह भिक्षुओं को अपने सोने का कंगन उतार कर दे देती है। पति के सन्तोष के लिए ही यह काशी का राजस्व प्राप्त करने का उद्योग करती है। जब प्रसेनजित का दूत सुदत्त उसे लिवाने के लिए आता है तो यह वहाँ जाना इसलिए अस्वीकार कर देती है कि महाराज ने वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया है और इस अवस्था में मेरा उनके पास होना अत्यन्त आवश्यक है। जब जीवक प्रसेनजित को यह सन्देश देता है तो वह कहती है—

“जीवक यह तुम क्या कहते हो। कोशल-कुमारी दशरथ नन्दिनी शान्ता का उदाहरण उसके सामने है; दग्ध ऋषि के साथ जो दिव्य जीवन व्यतीत कर सकती थी। क्या वासवी किसी दूसरे कोशल की राजकुमारी है? कुल-शील पालन ही तो आर्य ललनाओं का परमोज्ज्वल आभूषण है। स्त्रियों का वही मुख्य धन है।” पृ० ५४

और अन्त में जब विवश होकर अजात को मुक्त कराने के लिए कोशल जाती है तब भी वह अपने पति को छलना के हवाले कर जाती है और उसे भी पति की सेवा करके अपना जीवन सफल करने को कहती है। और वहीं वासवी नारी जीवन के आदर्श को उसके सामने रखती :—

“रानी ! यही जो जानती कि नारी का हृदय कोमलता का पालना है, दया का उद्गम है, शीतलता की छाया है और अनन्य भक्ति का आदर्श है,

तो पुरुषार्थ को दोग क्यो करती ।” पृ० ११२

माता के रूप में भी वासवी महान है। पद्मावती पर स्नेह होना तो स्वाभाविक बात है किन्तु अज्ञातशत्रु के साथ भी उसके हृदय में शीतल मामता भरी हुई है। छलना की कुटिलता और अज्ञात के तिरस्कारपूर्ण व्यवहार के बावजूद भी जब वह यह सुनती है कि वह अज्ञात से नहीं मिल पाएगी तो उसे बड़ा दुख होता है। जब अज्ञात पिता को बन्दी बना लेता है तब भी वह उस पर क्रोधित नहीं होती वरन् उसकी बुद्धि पर खेद प्रकट करती है। अन्त में वह अज्ञात को कोशल के बन्दीगृह से मुक्त कराती है। जब वह उसे अङ्क में लेती है तो वह कहता :—

‘कौन ? विमाता ! नहीं, तुम मेरी माँ हो। मां ! इतनी ठंडी गोद तो मेरी मां की भी नहीं है। आज मैंने जननी की शीतलता का अनुभव किया। मैंने तुम्हारा बड़ा अपमान किया है, मां ! क्या तुम क्षमा करोगी ?’ जब वासवी उसे मगध के सिंहासन पर भेजने की शीघ्रता की बात कहती है तो वह कहता है:—

“नहीं माँ, अब कुछ दिन उस बिपैली वायु से अलग रहने दो। तुम्हारी शीतल छाया का विश्राम मुझ से अभी नहीं छोड़ा जायगा।” पृ० ११७।

और अन्त में भी वह अज्ञात तथा छलना को क्षमा करा देती है।

सपत्नी के रूप में भी वासवी का चरित्र बड़ा शान्त एवं उदार है। छलना उसे कितना दुखी करती है, बात-बात में उस पर व्यंग कसती है, किन्तु वह कभी भी उचोचित नहीं होती। वह सदैव उसे शान्ति का उपदेश ही दिया करती है। अन्त में वह ही उसे क्षमा कराती है।

इसके अतिरिक्त वासवी को मानव-समाज की व्यवस्था का भी पूरा-पूरा ध्यान रहता है। जब छलना क्रोधित होकर देवदत्त को बन्दी बना लेती है तो वासवी कहती है।

“हाँ देवदत्त को मुक्त कर दो। चाहे इसने कितना भी हम लोगों का अनिष्ट-चिन्तन किया हो, फिर भी परिव्राजक मार्जनीय है।” पृ० १११

और अज्ञात और वाजिरा के विवाह के उपरान्त यह प्रसेनजित से कहती है:—

“कुटुम्ब के प्राणियों के स्नेह का प्रचार करके मानव इतना सुखी होता है, यह आज ही मालूम हुआ होगा। भगवन् ! क्या कभी वह भी दिन आवेगा, जब विश्व भर में एक कुटुम्ब स्थापित हो जाएगा और मानव मात्र स्नेह से अतनी गृहस्थी संभालेंगे।”

पृ० १३५

२—छलना

छलना में हमें तीन रूप दिखाई देते—१—राजमाता का रूप, २—पत्नी का रूप और ३—सपत्नी का रूप। इस का व्यक्तित्व दुर्बल है। आसानी से यह देवदत्त के हाथ का खिलौना बना ली जाती है। इसका स्वभाव बड़ा उग्र और हठी भी है।

आरम्भ में ही हमें इसके उग्र स्वरूप के दर्शन होते हैं। यह अज्ञात को ‘रण दुर्मंद साहसी’ बनाना चाहती है। माता के रूप में इसकी तीव्र कामना तब प्रकट होती है जब वह युद्ध से लौटे हुए अज्ञात को इन शब्दों में प्रेरित करती है :—

“बच्चे ! मैंने बड़ा भरोसा किया था कि तुम्हें भरतखंड का सम्राट देखूँगी और वीरप्रसूती होकर एक बार गर्व से तुमसे चरण वन्दना कराऊँगी, किन्तु आह ! पति सेवा से भी बंचित हुई और पुत्र का.....।” पृ० १०७

यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि वह अपनी इसी आकाँक्षा की पूर्ति के लिए अज्ञात को बार-बार युद्ध के लिए प्रेरित करती है।

पत्नी के रूप में ही वह असफल ही रहती है। वह देवदत्त की बातों में आकर पति को बन्दी बनाती है। राजा को इस बात के लिए विवश करती है कि वह अज्ञात को युवराज बनाए। इस विषय में छलना का चरित्र वासवी के चरित्र से ठीक विपरीत है। उपवन में चले जाने के पश्चात् वह कभी अपने पति की सुध लेने के लिए नहीं जाती। उसके पति का बुद्ध पर दृढ़ विश्वास है किन्तु वह उनकी भी उपेक्षा ही करती है। उस समय उसमें परोपकार और करुणा के लिए कोई आकर्षण नहीं है। इतना ही नहीं वह इन को भिखारियों का गुण और बल का अभाव समझती है। भद्दी सीख समझती है। जब पद्मावती अज्ञात को अहिंसा और कोमलता सिखाती है। इस पर छलना उस से कहती है—

‘पद्मा ! क्या तू इसकी मंगल-कामना करती है ? इसे अहिंसा सिखाती है, जो भिक्षुओं की भद्दी सीख है ? जो राजा होगा, जिसे शासन करना होगा उसे भिखमंगों का पाठ नहीं पढ़ाया जाता राजा का परम धर्म न्याय है, वह दंड के आधार पर है । क्या तुझे मालूम नहीं कि वह भी हिंसा मूलक है ? इस प्रकार हम देखते हैं कि छलना में पुरुषों की सी उग्रता है । विमाता के रूप में भी वह सचमुच सौतेली माँ है । इसी जरा सी बात पर वह पद्मावती को कहती है:—

पृ० २५ ।

“तू कुटिलता की मूर्ति है । कुरर्णक को अयोग्य शासक बनाकर उसका राज्य आत्मसात् करने के लिए कौशाम्बी से आई है ।”

पृ० २५ ।

इस पर पद्मावती नाराज होकर कौशाम्बी लौट जाती है ।

छलना का सबसे विकृत स्वरूप उसका सपत्नी का स्वरूप है । यद्यपि वह वासवी से बड़ी है किन्तु वह राजमाता और सदैव उसका अपमान करती रही उसे राजमाता होने का बड़ा गर्व है । वह वासवी के यह कहने पर कि तुम मुझ से छोटी हो, वह कहती है:—

“(स्वगत) मैं छोटी हूँ, यह अभिमान तुम्हारा अभी गया नहीं है । (प्रकट) मैं छोटी हूँ, या बड़ी किन्तु राजमाता हूँ । अज्ञात को शिक्षा देने का मुझे अधिकार है ।”

पृ० २७ ।

छलना के चरित्र का सबसे बड़ा पतन वहाँ दिखाई देता है जब वह वासवी को अज्ञात की विजय का समाचार सुनाने आती है जब बिम्बसार उस से यह कहता है कि यह सूचना तो एक सामान्य अनुचर द्वारा भी भेजी जा सकती थी, तो वह उत्तर देती है:—

“किन्तु वह मेरी जगह तो नहीं हो सकता था और संदेश भी अच्छी तरह से नहीं कहता । वासवी के मुख की प्रत्येक सिकुड़न पर इस प्रकार लक्ष्य न रखता, न तो वासवी को इतना प्रसन्न ही कर सकता था ।”

पृ० ८८ ।

इस पर राजा बिम्बसार उसे जो फटकार देता है, वह लेखक और सामाजिक की भटकार बन जाती है:—

“बिम्बसार (खड़े होकर)—छलना ! मैंने राजदंड छोड़ दिया है; किन्तु

मनुष्यता ने अभी मुझे नहीं परित्याग किया है। सहन की भी सीमा होती है।
अधम नारी !—चली जा। तुझे लज्जा नहीं—बर्बर लिच्छिवी रक्त ।”

पृ० ८८ ।

अन्त में जब अज्ञात बन्दी होकर विदेश चला जाता है। तो उसे सत्य का दर्द-भरा ज्ञान होता है। वह देवदत्त पर कुपित हो उठती है:—

“धूर्त तेरी प्रवंचना से मैं इस दशा को प्राप्त हुई, पुत्र बन्दी होकर विदेश को चला गया और पति को मैंने स्वयं बन्दी बनाया। पाखंड तूने ही यह चक्र रचा है।”

× × × ×

जी चाहता है कि इस नर पिशाच मूर्ति को अभी मिट्टी में मिला दूँ।”

पृ० १०६ ।

इस समय उसकी दशा उसी के शब्दों में ‘घायल बाघिनी’ सी हो रही है। वह वासवी को भी पकड़ मंगवाती है। किन्तु वासवी के समझाने-बुझाने से वह अपने कृत्यों पर पश्चाताप करती है। वह कहती है—

“वासवी ! बहिन !—(रोने लगती है)—मेरा कुणीक मुझे दे दो मैं भीख माँगती हूँ। मैं नहीं जानती थी कि निसर्ग से इतनी करुणा और इतना स्नेह, सन्तान के लिए, इस हृदय में संचित था। यदि जानती होती तो इस निष्ठुरता का स्वाँग कभी न करती।”

पृ० १११ ।

छलना नारी के सहज स्वभाव को भूल गई थी। उसने पौरुष का आश्रय लिया। पुत्र-प्रेम ने ही उसे उद्धत बनाया और फिर उसी ने उसे फिर नारी बना दिया अन्त में वह बिम्बसार से भी क्षमा माँगती है—

“नाथ ! मुझे निश्चय हुआ कि वह मेरी उद्दण्डता थी। वह मेरी कूट चातुरी थी, दम्भ का प्रकोप था। नारी-जीवन के स्वर्ग से मैं वंचित कर दी गई।.....क्षमा करके, सहन करके, जो आपने इस परिणाम की यन्त्रणा के गर्त में मुझे डाल दिया है, वह मैं भोग चुकी। अब उबारिये।” पृ० १४४

इस प्रकार पश्चाताप की आग उसके मन की पाप-शृंखलाओं को गला देती है।

३—मागन्धी

मागन्धी के हमें तीन रूप दिखाई देते हैं—१—राजरानी का, २—वेश्या का और ३—प्रेमिका का । उसके चरित्र के विकास-क्रम का मूल है उसका रूप-गर्व और गौतम द्वारा उसका अपमान । इसी कारण से वह कहाँ से कहाँ पटक दी जाती है । वह स्वयं कहती है:—

“प्रभु ! मैं अभागिनी नारी, केवल उस अवज्ञा की चोट से बहुत दिन भटकती रही । मुझे रूप का गर्व बहुत ऊँचे चढ़ा ले गया था, और अब उसने इतने ही नीचे पटका ।”

पृ० १३१ ।

मागन्धी एक ब्राह्मण की कन्या थी । वह उसका विवाह गौतम से करना चाहता था किन्तु उन्होंने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया । तभी से मागन्धी गौतम के विरुद्ध हो जाती है । फिर वह उदयन की रानी बन जाती है । वहाँ पहुँचकर भी वह इस अपमान की पीड़ा को भूल नहीं पाती । राजरानी के रूप में भी उसका लुद्र रूप-गर्व गया नहीं वरन् और भी प्रज्वलित होता रहा । वह कहती है:—

“इस रूप का इतना अपमान । सो भी एक दरिद्र भिक्षु के हाथ ! मुझ से ब्याह करना अस्वीकार किया । यहां मैं राजरानी हुई फिर भी वह ज्वाला न गई; यहाँ रूप-गौरव हुआ तो धन के अभाव से दरिद्र-कन्या होने के अपमान की यन्त्रणा में पिस रही हूँ । अच्छा, इसका भी प्रतिशोध लूंगी, अब से यही मेरा व्रत हुआ । उदयन राजा है, तो मैं भी अपने हृदय की रानी हूँ । दिखला दूंगी कि स्त्रियाँ क्या कर सकती हैं !

पृ० ४१ ।

और उसे प्रतिशोध लेने का अवसर भी शीघ्र मिल जाता है और इस प्रतिशोध को पूरा करने के लिये वह सब कुछ कर गुजरती है । वह पद्मावती और गौतम के सम्बन्ध के विषय में उदयन जो एक संकीर्ण मनोवृत्ति का खुशामद-पसन्द राजा है—वीणा से निकलते हुए सर्प के बच्चे को दिखाकर उदयन के उस घृणित सन्देश को विश्वास के रूप में बदल देती है, तब सामाजिक का हृदय उसके विरुद्ध जल उठता है, किन्तु मागन्धी का षडयन्त्र असफल होता है और वह महल में आग लगाकर भाग जाती है । स्पष्टतः उसके रानी के रूप में रूप का गर्व, सौतिया डाह और राजा को पूर्णतः अपने

वश में करने की चाह पाई जाती है ।

इसके पश्चात हमें वह वेश्या रूप में दिखाई देती है । उस समय के उसके उद्गार वेश्या वर्ग के उद्गार हैं:—

“स्वर्ण पिंजर में भी श्यामा को क्या वह सुख मिलेगा—जो उसे हरी डालों पर कसीले फलों के चखने में मिलता है ।...मैं भी उसी श्यामा की तरह जो स्वतंत्र है, राज-महल की परंत्रता से बाहर आई हूँ । हंसूंगी और हँसाऊँगी, रोऊँगी और रुलाऊँगी । फूल की तरह आई हूँ, परिमल की तरह चली जाऊँगी । स्वप्न की चंद्रिका में मलयानिल की सेज पर खेलूंगी । फूलों की धूल से अंगराग बनाऊँगी, चाहे उसमें कितनी ही कलियाँ क्यों न कुचलनी पड़े । चाहे कितनों के ही प्राण जाएँ मुझे कुछ चिन्ता नहीं । कुम्हलाकर, फूलों को कुचल देने में ही सुख है ।”

पृ० ७६ ।

वह अपने आप को वेश्या के रूप में पाकर धन्य समझ रही है:—

“बड़े-बड़े राज पुरुष और श्रेष्ठी इसी चरण को छूकर अपने को धन्य समझते हैं । धन की कमी नहीं, मान का कुछ ठिकाना नहीं, राजरानी होकर और क्या मिलता था केवल साधन्य ज्वाला की पीड़ा ।”

पृ० ७७ ।

यहीं पर हमें उसके प्रेमिका के रूप में दर्शन होते हैं । वह शैलेन्द्र पर मुग्ध हो जाती है । अतृप्त वासना लेकर, रात्रि से भी भयंकर हृदय लेकर वह उसके पास प्रणन-भिक्षा माँगने को जाती है । पहले तो शैलेन्द्र भी इससे घबराता है, अन्त में वह इसके साथ चल देता है । श्यामा यह प्रेम भी बड़ा भयङ्कर है । इसका कारण यह है कि वह प्रेम नहीं, अतृप्त वासना का तूफान है जो उसे उड़ाकर शैलेन्द्र के पास ले आया है । वह बन्दी हुए शैलेन्द्र को छुड़ाने के लिये समुद्रदत्त को बलि का बकरा बनाकर भेजती है । आखिर एक रोज शैलेन्द्र इस वासना की घुटन से ऊब उठता है । श्यामा का गला घोट वह वहाँ से चला जाता है । इस घटना से पूर्व ही उसे एक भयङ्कर स्वप्न आता है । वह शैलेन्द्र से कहती है—

“मैंने अपने जीवन भर में तुम्ही को प्यार किया है । तुम मुझे धोखा तो नहीं दोगे ? ओह ! कैसा भयानक स्थान है । उसी स्वप्न की तरह.....”

पृ० ६८ ।

और तुरंत ही उसका स्वप्न सच्चा होता है ।

महात्मा बुद्ध श्यामा के प्राणों की रक्षा करते हैं । उपर्युक्त घटना उसकी चेतना पर एक प्रबल आघात करती है और उसका चरित्र बदल जाता है । वह मल्लिका की कुटिया में विरुद्धक पर भयंकर अभियोग लगाती है किन्तु जब वह उसे ग्रहण करने पर स्वीकार होता है तो वह उत्तर देती है—

“नहीं देवि ! अब मैं आपकी सेवा करूँगी, राजसुख मैं बहुत भोग चुकी हूँ । अब मुझे राजकुमार विरुद्धक का सिंहासन भी अभीष्ट नहीं है, मैं तो शैलेन्द्र डाकू को चाहती थी और फिर वह मल्लिका की कुटिया में ही रह जाती है ।

पृ० १२१ ।

उदयन की रानी मागन्धी और काशी की वेश्या श्यामा अन्त में आम्रपाली के रूप में हमारे सम्मुख आती है । वह स्वयं सोचती है—

“अपनी परिस्थिति को संयत न रखकर व्यर्थ महत्व का ढोंग मेरे हृदय ने किया, काल्पनिक सुख-लिप्सा में ही पड़ी-उसी का यह परिणाम है । स्त्री-सुलभ एक स्निग्धता, एक सरलता की मात्रा कम हो जाने से जीवन में कैसे बनावटी भाव आ गए । जो अब केवल एक संकोचदायिनी स्मृति के रूप में अवशिष्ट रह गए ।” पृ० १३६ । तभी वहाँ गौतम बुद्ध पधारते हैं और उसे उपदेश देकर अपनी शरण में लेते हैं । यहाँ आम्रपाली के विशुद्ध प्रेम का स्वरूप दिखाई देता है । भगवान गौतम के आगमन पर वह कहती है—

‘प्रभु ! आ गए, इस प्यासे हृदय की तृष्णा मिटाने को अमृत-स्रोत ने अपनी गति परिवर्तित की—इस मरुदेश में पदार्पण किया ।’ पृ० १३७

उसके पश्चाताप भी भगवान उसे समझाते हैं कि अब तुम अग्नि में तपे हुये हेम की तरह शुद्ध हो गयी हो । विश्व के कल्याण में अग्रसर हो ।” तब वह उत्तर कहती है—

“अन्त में मेरी विजय हुई नाथ ! मैंने अपने जीवन के प्रथम वेग में ही आपको पाने का प्रयास किया था । किन्तु वह समय ठीक भी नहीं था । आज मैं अपने स्वामी को, अपने नाथ को, अपनाकर धन्य हो रही हूँ

गौतम—मागंधी ! अब उन अतीत विकारों को क्यों स्मरण करती निर्मल हो जा !

मागन्धी—प्रभु मैं नारी हूँ, जीवन भर असफल होती आई हूँ । मुझे उस विचार के सुख से न वंचित कीजिए । नाथ ! जन्म भर के पराजय में भी आज मेरी ही विजय हुई । पतितपावन ! यह उद्धार आपके लिये भी महत्व देने वाला है और मुझे तो सब कुछ ।

गौतम—अच्छा आम्रपाली ! कुछ खिलाओगी । पृ० १३७ ।

यहाँ दो अत्यन्त महत्वपूर्ण बातें स्पष्ट होती हैं । प्रथम मागन्धी को बुद्ध से आरंभ में ही प्रेम था । द्वितीय भगवान् बुद्ध उससे यह प्रेम की मधुर संपत्ति छीनते नहीं है । 'प्रेम-भावना' के विवेचन में इसका विस्तृत स्पष्टीकरण किया जायगा प्रथम बात की ध्यान से समीक्षा की जानी चाहिए ।

ऊपर यह दिखाया जा चुका है कि वह श्यामा के रूप में शैलेन्द्र से प्रेम करती है । इस बात को वह तीन बार कहती है । फिर गौतम से उसका प्रेम कैसा ? यहाँ उसके चरित्र में कुछ अन्तर्विरोध सा दिखाई देता है । इसका एक ही समाधान है और वह यह कि शैलेन्द्र से उसका प्रेम 'अमृत-वासना' का प्रकाश था । किन्तु मल्लिका की कुटिया पर आकर वह फिर से अपने प्रेम की घोषणा करती है । शैलेन्द्र से प्रेम में प्रसाद ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि वेश्याओं में सच्चे प्रेम की प्यास होती है । फिर मागन्धी का गौतम से प्रेम कैसा ? और वही उसका सर्वस्व क्यों ?

कथा—प्रसंग में प्रसाद जी ने स्वयं लिखा है कि “बौद्धों की श्यामावती वेश्या आम्रपाली, मागन्धी और इस नाटक की श्यामा वेश्या का एकत्र संगठन कुछ विचित्र तो होगा; किन्तु चरित्र का विकास और कौतुक बढ़ाना ही इसका उद्देश्य है ।” (पृ० २०) । इसमें मागन्धी और आम्रपाली तो ऐतिहासिक हैं और श्यामा कल्पित । समग्र दृष्टि से देखने पर मागन्धी के संपूर्ण चरित्र में कल्पना का रंग अधिक मिलेगा । किन्तु लेखक अपनी इस कल्पना में पूर्णतः सफल हुआ है ।

मागन्धी के विषय में यह कहा जा सकता है कि वह फूल की तरह आई, और परिमल की तरह गई, किन्तु उसका ऐहिक जीवन एक विषैले कांटे सा था ।

४—मल्लिका

मल्लिका ने कल्पित देवत्व को पूर्ण मनुष्यत्व के रूपमें प्रदर्शित किया है। कमल ने उसे सौन्दर्य दिया है, चंद्रमा ने उसे शीलता प्रदान की है, सूर्य ने उसे सतीत्व के तेज से सुशोभित किया है और बादलों ने उसे परोपकार का रस भेंट किया है। पथ-भ्रष्ट हृदय की नौकाओं को राह पर लाने वाला आकाश-दीप है। इसकी किरणों को पाकर न जाने कितने धूल के कण व अनन्त काल के लिये स्वर्णिम आभा भरने लगे।

हमें मल्लिका के दो रूप दिखाई देते हैं—१—पत्नी का और २—समाज के कल्याण में रत देवी का। उसे अपने पति से अनन्य प्रेम है। उसका पति भी उसकी इच्छा पूर्ण करने के लिये पाँच सौ मल्लों को हराकर उसे जल पिला कर लाता है। वह मल्लिका की किसी भी इच्छा को नहीं टालता। किन्तु मल्लिका अपने कर्तव्य के प्रति पूर्ण सजग है। वह अपने प्रेम को पति के मार्ग का काँटा नहीं बनने देती। शक्तिमती उसे यह समाचार देती है कि उसके पति बन्धुल को काशी भेजकर मरवाने का षडयन्त्र किया जा रहा है, तो वह शक्तिमती पर विश्वास नहीं करती और स्वामि-भक्ति प्रजा होने के नाते अपने पति को वापिस आने के लिये सन्देशा नहीं भेजती। वह कहती है—

“रानी ! बस करो। मैं प्राणनाथ को अपने कर्तव्य से च्युत नहीं करा सकती और उगसे लौट आने का अनुरोध भी नहीं कर सकती। सेनापति का राजभक्त कुटुम्ब कभी विद्रोही नहीं होगा और राजा की आज्ञा से वह प्राण दे देना अपना धर्म समझेगा—जब तक कि स्वयं राजा, राष्ट्र का द्रोही न प्रमाणित हो जाए।”

×

×

×

×

गर्विली स्त्री, तुम्हें राजपद की बड़ी अभिलाषा थी; किन्तु मुझे कुछ नहीं, केवल स्त्री सुलभ समवेदना तथा कर्तव्य और धैर्य की शिक्षा मिली है। भाग्य जो कुछ दिखावे।” पृ० ७६

वह अपने कर्तव्य को भली भाँति जानती है। इससे पूर्व भी वह स्पष्ट कहती है कि महान हृदय को केवल विलास की मदिरा पिलाकर मोह लेना ही कर्तव्य नहीं।”

इसके अतिरिक्त उसके धैर्य की शक्ति और कर्तव्य परायणता का ज्वलंत उदाहरण हमें तब मिलता है जब उसे अपने पति की छलपूर्ण हत्या का समाचार मिलता है। उस समय की उसकी दशा है—

हृदय थरथरा रहा है, कंठ भरा आता है— एक निर्दय चेतना सब इन्द्रियों को और शिथिल बनाए दे रही है। आह ! (ठहर कर और निःश्वास लेकर) हे प्रभु। मुझे बल दो— विपत्तियों को सहन करने के लिए बल दो।” पृ० ८२

उसी समय उसे स्मरण हो आता है कि उसने सारिपुत्र और मोद्गलम्यन को निमन्त्रित किया है। दुख की इस भयंकर आंधी में भी उसकी कर्तव्य की आँखें बन्द नहीं होतीं। वह कहती है—

“किन्तु नहीं, सरला ! मैं भी व्यवहार जानती हूँ, आतिथ्य परम धर्म है। मैं भी नारी हूँ, नारी के हृदय में जो हाहाकार होता है वह मैं अनुभव कर रही हूँ। शरीर की धमनियाँ खिंचने लगती हैं। जी रो उठता है, तब भी कर्तव्य करना ही होगा।” पृ० ८३

यहां उसके अक्षय धैर्य का दिव्य प्रमाण मिलता है। वह उन्हें शान्तिपूर्वक भोजन कराती है। सारिपुत्र उससे कहते हैं—“तुम्हारा धैर्य सराहनीय है ! आनन्द ! लो, इस मूर्तिमती धर्म परायणता से कर्तव्य की शिक्षा लो।” उस समय पति की मृत्यु के आघात से और इन महापुरुषों के दिव्य प्रभाव में ही उस पर सत्य ज्ञान प्रकाशित होता है। वह कहती है :—

“पतितपावन की अमोघ वाणी ने दृश्यों की नश्वरता की घोषणा की है। अब मुझे वह मोह की दुर्बलता सी दिखाई पड़ती है। उस धर्म-शासन से कभी विद्रोह न करूँगी, वह मानव का पवित्र अधिकार है, शान्तिदायक धैर्य का साधन है, जीवन का विश्वास है—(पैर पकड़ती है) महापुरुष ! आशीर्वाद दीजिए कि मैं इससे विचलित न होऊँ।” पृ० ८४

इस पर सारिपुत्र उत्तर देते हैं—

“उठो देवि ! उठो ! तुम्हें मैं क्या उपदेश करूँ ? तुम्हारे चरित्र, धैर्य के—कर्तव्य के—स्वयं आदर्श हैं। तुम्हारे हृदय में अखंड शान्ति है। हाँ, तुम जानती हो कि तुम्हारा शत्रु कौन है— तब भी विश्वमैत्री के अनुरोध से,

उससे केवल उदासीन ही न रहो, प्रत्युत द्वेष भी न रखो ।” पृ० ८४-८५

इसी समय प्रसेनजित इससे क्षमा माँगने के लिए आता है। यह उसे फटकारती है, किन्तु इसके मुख पर तो ईर्ष्या और प्रतिहिंसा का चिह्न भी नहीं दिखाई देता, और यह शान्तिपूर्वक कोशल छोड़ उसकी सीमा पर एक कुटिया में रहने लगती है।

इस कुटिया में हमें इसके देवी स्वरूप का विस्तार मिलता है। इसके महिमामय चरित्र से प्रभावित होने वाले पात्र हैं—प्रसेनजित, विरुद्धक, अजात-शत्रु, दीर्घ कारायण और शक्तिमती। प्रसेनजित के ऊपर क्षमा करने के पश्चात् भी यह उसके प्राणों की रक्षा करती है। अजात से युद्ध में घायल प्रसेनजित की सेवा मल्लिका ही करती है। उस समय उसका भानजा कारायण प्रसेनजित को मार देने के लिए कहता है किन्तु वह उत्तर देती है :—

“कारायण ! तुम्हारा रक्त अभी बहुत खौल रहा है। तुम्हारी प्रतिहिंसा की बर्बरता वेगवती है, किन्तु सोचो, विचारो, जिसके हृदय में विश्वमैत्री के द्वारा करुणा का उद्रेक हुआ है, उसे अपकार का स्मरण क्या कभी अपने कर्तव्य से विचलित कर सकता है ?” पृ० ९१

जब अजात क्रोध में भरा हुआ, प्रसेनजित को मारने के लिए उसकी कुटिया पर आता है, वह भी मल्लिका के क्षमाशील व्यवहार को देखकर और उसकी शीतल वाणी सुनकर, मुग्ध हो जाता है और शान्त होकर वापिस लौट जाता है। द्वितीय युद्ध में वह घायल विरुद्धक की सेवा करती है क्योंकि वहाँ उसकी विश्वमैत्री को परीक्षा थी जिसमें वह उत्तीर्ण हुई। अन्त में वह प्रसेनजित के पास जाकर शक्तिमती और विरुद्धक दोनों को क्षमा करा देती है।

मल्लिका के चरित्र की तुलना जॉन आफ आर्क से की जा सकती है। इतना ही नहीं कुछ बातों में तो प्रसेनजित और विरुद्धक के क्षमा करने में तो वह उससे भी महान है।



प्रसाद की भाषा

लेखक के चिन्तन और व्यक्तित्व के अनुरूप ही उसकी भाषा होती है। हर एक लेखक का व्यक्तित्व अन्य लेखकों के व्यक्तित्व से भिन्न होता है। यह भिन्नता कम भी हो सकती है और अधिक भी। पर जितनी भी हो होती अवश्य है। इसीलिए एक लेखक की शैली दूसरे लेखक की शैली से विशिष्टता लिए होती है। प्रसाद के व्यक्तित्व की दो प्रधान विशेषताएँ थीं अतीत संस्कृति के प्रति मोह और दर्शन की गंभीरता। प्रसाद की भाषा पर इन दोनों बातों का प्रभाव उसकी संस्कृत बहुलता में दिखाई देता है। अतीत दर्शन को पूर्णरूपेण अभिव्यक्त करने के लिए यह आवश्यक और स्वाभाविक ही है कि उसी काल की शब्द योजना भी अपनाई जाए। इससे कथा की ऐतिहासिकता भी मनोहर हो जाती है। 'प्रकोष्ठ', 'राजमहिषी', 'अमात्य', 'प्रतिहारी', 'अनुचर' 'वारविलासिनी' 'पतित-पावन' आदि अनेक शब्दों के प्रयोग देखकर सामाजिक की चेतना स्वयमेव उस युग की ओर आकृष्ट हो जाती है जिस समय इस प्रकार के प्रयोग ही एकमात्र प्रयोग थे। ऐतिहासिक कथाओं के आधार पर रची हुई कृतियों में ऐतिहासिक वातावरण होना सुतराँ अनिवार्य है। यदि उसमें ऐतिहासिक वातावरण नहीं है तो चाहे चरित्रों का विकास कितना ही मोहक क्यों न हो, वह रचना श्रेष्ठ नहीं हो सकती। ऐतिहासिक वातावरण से मेरा अभिप्राय वह चेतना है जिसकी छाया में वर्तमान का व्यक्ति वर्तमान को भूल कर अतीत की गलियों में घूमने लगता है। और इसके निर्माण के साधन दो हैं— १—अतीत युग के प्रयोग और २—घटनाओं का इतिहास सम्मत विकास क्रम। दोनों ही बातें प्रसाद में मिलती हैं। उनकी भाषा ऐतिहासिक वातावरण के निर्माण में विशेष योग देती है।

“किन्तु अतीत की शब्दावली के प्रयोग में एक दोष भी आने की संभा-

वना रहती है। और वह यह कि उसके कारण वर्तमान भाषा का स्वरूप बोझिल और अप्राकृतिक हो जाने की आशंका रहती है। इस दोष को बचाने के लिए लेखक को वर्तमान भाषा की आकाँक्षाओं और शक्ति से पूर्ण परिचित होना आवश्यक है। प्रसाद ने अतीत के प्रयोगों के अतिरिक्त संस्कृत के नए शब्दों का भी प्रयोग किया है—जैसे 'सम्भार' 'सम्भ्रान्त', आदि। किन्तु इन सब के होते भी उनकी भाषा अप्राकृतिक नहीं होती? वरन् उसमें विषयानुरूप ऐसा प्रवाह है, और वाक्य-विन्यास की ऐसी मनोहरता है कि सामाजिक मुग्ध हो जाता है।

व्यक्तित्व के नियन्त्रण के अतिरिक्त भाषा पर दूसरा नियन्त्रण होता है विषय का और पात्र का। भाषा की विषयानुकूलता और पात्रानुकूलता ही उसकी सफलता है। प्रसाद की भाषा में ये दोनों गुण मिलते हैं। सामान्य दृष्टि से देखते हुए हम अज्ञातशत्रु की भाषा को चार रूपों में देख सकते हैं—
१—अज्ञात आदि की उग्रता प्रधान कठोर भाषा, २—गौतम आदि की करुण प्रधान शान्त भाषा, और ३—श्यामा आदि मंजिरा की प्रेम-प्रधान, आवेश-मय भाषा और ४—बिम्बसार आदि की चिन्तन प्रधान गंभीर भाषा। भाषा के इन चारों रूपों में पर्याप्त भेद है जैसा कि नीचे के उदाहरणों से स्पष्ट होगा :—

१—अज्ञात आदि की उग्रता प्रधान कठोर भाषा—

“अज्ञात—यह क्या सच है समुद्र ! मैं यह क्या सुन रहा हूँ। प्रजा भी ऐसा कहने का साहस कर सकती है ? चींटी भी पंख लगाकर बाज के साथ उड़ना चाहती है ! ‘राज कर मैं न दूंगा’—यह बात जिस जिह्वा से निकली, बात के साथ ही वह भी क्यों न निकाल ली गई ? काशी का दण्डनायक कौन मूर्ख है ? तुमने उसी समय उसे बन्द क्यों नहीं किया ? पृ० ६२

×

×

×

×

कहाँ गया ? मेरे क्रोध का कन्दुक, मेरी क्रूरता का खिलौना, कहाँ गया ? रमणी ! शीघ्र बता- वह घमण्डी कोशल सम्राट कहाँ गया ?” पृ० ६४

२—गौतम आदि की करुण प्रधान शान्त भाषा—

“राजन् शुद्ध बुद्धि तो सदैव निर्लिप्त रहती है। केवल साक्षी रूप से वह

सब दृश्य देखती है। तब भी इस साँसारिक भगड़ों में उसका उद्देश्य होता है कि न्याय का पक्ष विजयी हो—यही न्याय का समर्थन है। तटस्थ की यही शुभेच्छा सत्व से प्रेरित होकर समस्त सदाचारों की नींव विश्व में स्थापित करती है। यदि वह ऐसा न करे तो अप्रत्यक्ष रूप से अन्याय का समर्थन हो जाता है— हम विरक्तों को भी इसीलिए राजदर्शन की आवश्यकता हो जाती है।” पृ० ३०

३—श्यामा की प्रेम-प्रधान आवेशमयी भाषा—

“शैलेन्द्र क्या तुम्हीं को बताना होगा। मेरे हृदय में जो ज्वाला उठ रही है उसे अब तुम्हारे अतिरिक्त और कौन बुझावेगा ? तुम मेरे स्नेह की परीक्षा चाहते हो—बोलो, तुम कैसी परीक्षा चाहते हो ?

+ + + +

शैलेन्द्र, लो यह अपनी नुकीली कटार, इस तड़पते हुए कलेजे में भोंक दो। क्या तुम्हारा हृदय केवल मांस पिंड है ? उसमें रक्त का संचार नहीं ? नहीं-नहीं, ऐसा नहीं, प्रियतम—” पृ० ७२-७३

“उदन (प्रेमोन्मत्त होकर) तो मागन्धी, कुछ गाओ। मुझे अपने मुख-चन्द्र को निर्निमेष देखने दो कि मैं एक अतीन्द्रिय जगत की नक्षत्रमालिनी निशा को प्रकाशित करने वाले शरच्चन्द्र की कल्पना करता हुआ भावना की सीमा लाँघ जाऊँ, और तुम्हारा सुरभि-निःश्वास मेरी कल्पना को आलिंगन करने लगे।” पृ० ४४

४—बिम्बसार आदि की चिन्तन-प्रधान गंभीर भाषा—

“रात में ताराओं का प्रभाव विशेष रहने से चन्द्रमा नहीं दिखलाई देता और चन्द्रमा का तेज बढ़ने से तारे सब फीके पड़ जाते हैं, क्या इसी को शुक्ल-पक्ष और कृष्णपक्ष कहते हैं ? देवि ! कभी तुमने इस पर विचार किया है ?

वासवी—आर्यपुत्र ! मुझे तो विश्वास है कि नीला पर्दा इसका रहस्य छिपाए हैं, जितना चाहता है उतना ही प्रकट करता है। कभी निशाकर को छाती पर लेकर खेला करता है, कभी ताराओं को बिखेरता और कृष्ण कुहू के साथ क्रीड़ा करता है।” पृ० ८६

उपरोक्त सभी उदाहरणों की विशेषताओं को देखा जा सकता है। उग्रता-

प्रधान कठोर भाषा में वाक्य छोटे-छोटे हैं, शब्द सरल हैं और तीव्र प्रवाह है। कर्ण-प्रधान शान्त भाषा में संस्कृत के शब्द मिलते हैं, कथन सूक्तियों के रूप में निकलता है, तथा धीर प्रवाह में प्रभावात्मकता है। प्रेम-प्रधान आवेश मयी भाषा में आवेश के साथ-साथ अलंकरण का सौंदर्य भी मिलता है। प्रसाद प्रेम और सौंदर्य का कवि है। प्रेम की अभिव्यक्ति में उनकी काव्य-प्रतिमा मुखर हो उठती है। विरुद्धक भी मल्लिका के सौंदर्य का ऐसा ही अलंकार पूर्ण स्मरण करता है। चिन्तन-प्रधान भाषा में गंभीरता की पूरी-पूरी छाया है।

कथोपकथन की भाषा की पात्रानुकूलता और विषयानुकूलता ऊपर दिखा दी गई है। कथोपकथन के दो उद्देश्य होते हैं। प्रथम कथा का विकास करना द्वितीय, पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालना। दोनों ही उद्देश्य कथोपकथनों द्वारा सिद्ध होते हैं। नाटकों के संवादों में लेखक की सबसे अधिक कुशलता का परिचय मिलता है। उनकी शक्ति अपार होनी चाहिए और शब्द स्थापना सघन एवं दृढ़। नाटकों के संवादों की इन्हीं विशेषताओं के कारण ही कथा साहित्य की सभी शैलियों में नाटकीय कथोपकथनों के प्रयोग पर बल दिया जाता है। उपन्यास और कहानी में तो कवि अपनी बात कहने में स्वतन्त्र होता है। वह पात्रों के चरित्र पर भी प्रकाश डाल सकता है। और कथा के घटनाक्रम का ब्योरा भी दे सकता है। नाटक में यह कार्य पूर्णतः संवादों के द्वारा ही होता है।

स्वगत कथनों के प्रयोग पर अस्वाभाविकता का आक्षेप लगाया जाता है और हिन्दी नाट्य-साहित्य का इतिहास यह बताता है कि उसके विकास के साथ ही साथ अन्य भारतीय नाट्य लक्षणों के हास के साथ-साथ स्वगत का भी लोप होता गया है। स्वगत अस्वाभाविक कहे जाते हैं क्योंकि पात्र अपने मन की बात गुप्त रूप से कहता है किन्तु सारा दर्शक समाज उसे सुनाता है। अज्ञातशत्रु में स्वगत का प्रयोग सभी स्थलों पर कुछ उद्देश्य लेकर ही किया गया है। स्वगत के अतिरिक्त अन्य साधन से उन घटनाओं का संदेश सामाजिक तक नहीं पहुँचाया जा सकता था। उदाहरण के लिए विरुद्धक के स्वगत में उसके मल्लिका से प्रेम का परिचय प्राप्त होता है।

प्रसाद की भाषा का ऐतिहासिक दृष्टि से भी मूल्यांकन करना आवश्यक

है। कारण, प्रसाद से पूर्व द्विवेदी युग में तो खड़ी बोली का निर्माण ही हो रहा था। भारतेन्दु काल से पूर्व का काल खड़ी बोली का जन्म करता है, भारतेन्दु और द्विवेदी का युग उसका निर्माण काल है, प्रसाद काल उसका परिष्कार काल है। प्रसाद से पूर्व के युग में खड़ी बोली का नाटकों में प्रयोग तो होता था किन्तु उसमें केवल इतनी ही शक्ति थी कि अनूदित नाटकों के मूल भावों को प्रदर्शित करने भर की थी। प्रसाद ने खड़ी बोली की आत्म-शक्ति का ऊर्जस्वित किया। जहाँ तक नवीन शब्दों के प्रयोग का प्रश्न है, प्रसाद का स्थान बहुत ऊँचा है। राहुल साँकृत्यायन की भाषा निस्सन्देह प्रसाद की भाषा की टक्कर की है। खड़ी बोली को प्रसाद ने जिस धारा में विकसित किया उसका स्वरूप केवल राहुल की कृतियों में ही मिलता है। किन्तु प्रसाद की शैली का अधिक प्रचार नहीं हुआ। इसका कारण देखना चाहिए।

खड़ी बोली के विकास की दूसरी धारा का स्वरूप हमें प्रेमचन्द में दिखाई देता है। प्रेमचन्द और प्रसाद के व्यक्तित्व में अन्तर है, उतना ही अन्तर दोनों की शैलियों में है। प्रेमचन्द की भाषा का सौंदर्य उसके मुहावरों और लोकोक्तियों के सफल प्रयोग में है। प्रसाद में इनका तो अभाव सा ही है, किन्तु उसकी कमी संस्कृत शब्दों के प्रयोग द्वारा पूरी की है। प्रसाद और प्रेमचन्द की भाषा में वही अन्तर है जो विनय-पत्रिका और सूरसागर की भाषा में है। आगे चलकर प्रेमचन्द को पूरे प्रगतिवादी दल का सहयोग प्राप्त हो गया। फल स्वरूप उनकी बोली का प्रसार अधिक हुआ। किन्तु केवल प्रचार और विस्तार से किसी धारा का महत्वांकन नहीं किया जाता। यह निर्विवाद है कि जहाँ तक शैली का प्रश्न है, प्रसाद का स्थान हिन्दी साहित्य में खड़ी बोली एक उत्कृष्ट रूप को प्रदर्शित करती है।

प्रसाद की नाटकों की भाषा पर एक आरोप यह लगाया जाता है कि वह इतनी कठिन है कि सामाजिक की समझ से बाहर है और दूसरा आरोप यह है कि उनके सभी पात्र एक-सी भाषा बोलते देखे हैं।

जहाँ तक द्वितीय आरोप का सवाल है ऊपर यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि अज्ञातशत्रु में भाषा पात्रानुकूल है। यह सत्य है कि पात्रानुकूलता

की अपेक्षा भाषा में विषयानुकूलता अधिक है और यह भी सत्य है कि चंद्रगुप्त आदि अन्य नाटकों में विदेशी पात्र सिकन्दर आदि भी संस्कृत-मिश्रित भाषा बोलते दिखाई देते हैं। अज्ञातशत्रु में भी सभी पात्रों की भाषा में महान भेद नहीं है। इस आरोप का एक उत्तर तो है भाषा की विषयानुकूलता। प्रसाद ने स्वयं भी इन दोनों आरोपों का उत्तर 'रंगमंच' नाम के निबन्ध में दिया है जिसे नीचे उद्धृत किया जाता है:—

“भाषा की सरलता की पुकार भी कुछ ऐसी ही है। ऐसे दर्शकों और सामाजिकों का अभाव नहीं; किन्तु प्रचुरता जो पारसी स्टेज पर गायी गयी गजलों के शब्दार्थों से अपरिचित रहने पर भी तीन बार तालियाँ पीटते हैं। क्या हम नहीं देखते कि बिना भाषा के अबोल-चित्रपटों के अभिनय में भाव सहज ही समझ में आते हैं और कथकलि के भावाभिनय भी शब्दों की व्याख्या ही हैं? अभिनय तो सुरुचिपूर्ण शब्दों को समझने का काम रंगमंच अच्छी तरह करता है। एक मत यह भी है कि भाषा स्वाभाविकता के अनुसार पात्रों की अपनी होनी चाहिए और इस तरह कुछ देहाती पात्रों से उनकी अपनी भाषा का प्रयोग कराया जाता है। मध्य कालीन भारत में जिस प्राकृत का संस्कृत से सम्मेलन रंगमंच पर कराया गया था, वह बहुत कुछ पारिमार्जित और कृत्रिम-सी भी सीता इत्यादि भी संस्कृत बोलने में असमर्थ समझी जाती थी। वर्तमान युग की भाषा-सम्बन्धी प्रेरणा भी कुछ-कुछ वैसी ही है, किन्तु आज यदि कोई मुगलकालीन नाटक में लखनवी उर्दू मुगलों से बुलवाता है, तो वह भी स्वाभाविक और वास्तविक नहीं हैं। फिर राजपूतों की राजस्थानी भाषा भी आनी चाहिए। यदि अन्य असम्भ्य पात्र हैं, तो उनकी जंगली भाषा भी रहनी चाहिए। और इतने पर भी क्या वह नाटक हिन्दी का ही रह जाएगा? यह विपत्ति कदाचित् हिन्दी-नाटकों के लिए ही है।

मैं तो कहूँगा कि सरलता और क्लिष्टता पात्रों के भावों और विचारों के अनुसार भाषा में होगी ही और पात्रों के भावों और विचारों के ही आधार पर भाषा का प्रयोग नाटकों में होना चाहिए, किन्तु इसके लिए भाषा की एकतन्त्रता नष्ट करके कई तरह की खिचड़ी भाषाओं का प्रयोग हिन्दी नाटकों के लिए ठीक नहीं। पात्रों की संस्कृति के अनुसार उनके भावों और विचारों

में तारतम्य होना भाषाओं से परिवर्तन से अधिक उपयुक्त होगा । देश और काल के अनुसार भी सांस्कृतिक दृष्टि से भाषा में पूर्ण अभिव्यक्ति होनी चाहिए ।” काव्य और कला तथा अन्य निबंध— पृ० १०६-१०

यहाँ प्रसाद ने पहली बात यह कही है कि अभिनय के द्वारा कठिन शब्दावली भी सामाजिक की समझ में आ सकती है । सामाजिक की चेतना भाषा में नहीं घटनाओं और व्यापारों की ओर ही झुकी रहती है । हम इसका उदाहरण आज की अवस्था से देते हैं । कितने ही भारतीय अँग्रेजी फिल्मों देखने जाते हैं और अँग्रेजी भाषा का अधिकांश न समझने पर भी रसास्वादन करते हैं । दूसरी बात इसमें यह कही गई है कि यदि भाषा की पात्रानुकूलता के सिद्धान्त का पूर्ण पालन किया जाए, तो जिस नाटक में अनेक भाषाओं के बोलने वाले पात्र हैं, उसमें तो विभिन्न भाषाओं की निमाइश सी दिखाई देगी । तीसरी और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भाषा की पात्रानुकूलता नहीं उसकी भावानुकूलता और विचारानुकूलता अभीष्ट है, और नाटक की भाषा में भावों और विचारों के अनुसार ही परिवर्तन होना चाहिए । यह बात ऊपर दिखादी गई है । और चौथी बात यह कही है कि भाषा ऐसी होनी चाहिए जो कथानक के देश काल की सांस्कृतिक आकांक्षाओं और प्रवृत्तियों के अनुरूप हो ।

प्रसाद की नाट्यकला का स्वरूप

प्रसाद की नाट्यकला में संस्कृत के नाट्य-सिद्धान्तों और पश्चिम के नाट्य रचना के आदर्शों का सामंजस्य दिखाया जाता है। अब इस विषय में विचार किया जाएगा।

नाट्य-साहित्य के क्षेत्र में प्रसाद के अवतीर्ण होने से पूर्व का नाट्य-साहित्य देखने से हमें उसके तीन स्वरूप दिखाई देते हैं। प्रथम प्रकार के नाटक वे थे जिनमें संस्कृत नाट्य-सिद्धान्तों का पूर्ण पालन होता था—जैसे, हरिश्चन्द्र के नाटक और संस्कृत के अनूदित नाटक। द्वितीय, अँग्रेजी के अनूदित नाटक जिनसे हिन्दी जनता को अँग्रेजी नाट्य-सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त होता है। प्रसाद के नाटकों में संस्कृत के नाटकों का प्रभाव स्पष्ट है। बँगला नाटकों का सा भावावेश भी उनमें मिलता है और अँग्रेजी नाटकों से संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व का भी उनमें पूर्ण विकास लक्षित होता है। प्रसाद की नाट्यकला के स्वरूप को समझने के लिए पहले संस्कृत और अँग्रेजी के नाट्यालोचन के सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवरण देना अनावश्यक न होगा।

संस्कृत नाट्य-कला का स्वरूप

संस्कृत के आचार्यों ने श्रव्य और दृश्य भेद से काव्य के दो स्वरूप निर्धारित किए। जिसका अभिनय किया जा सके वह दृश्य-काव्य है और उसे ही रूप के आरोप के कारण रूपक भी कहते हैं—“दृश्यं तत्राभिनयं तद्रूपऽऽरोपत्तु रूपकम् ॥” [विश्वनाथ] नट के द्वारा रामादि के स्वरूप का अनुकरण—व्यापार अभिनय कहा जाता है। वह चार प्रकार का होता है—१- आंगिक—चेष्टाओं का अनुकरण, २-वाचिक-वाणी का अनुकरण, ३-सात्विक-भावों का अनुकरण और ४-आहार्य-वेश-भूषा का अनुकरण। विश्वनाथ ने नाटक के निम्नलिखित लक्षण गिनाए हैं—

प्रसिद्ध कथा वाला, पाँच संधियों से युक्त, अनेक विभूतियों तथा विलास की ऋद्धि से अलंकृत, सुख तथा दुख से उत्पन्न होने वाले अनेक रसों से स्निग्ध, पाँच से लेकर दस अङ्कों वाला, विख्यात वंश के राजर्षि, धीरोदात्त, प्रतापी दिव्य अथवा दिव्यादिव्य गुणों वाले नायक वाला, चार या पाँच क्रियाशील पुरुषों वाला, शृंगार या वीर रस को अङ्गी तथा अन्य रसों को अङ्ग रूप में अभिव्यक्त करने वाला और अन्त में चमत्कारपूर्ण कार्य-सिद्धि से युक्त नाटक होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त नाटक के अभिनय से पूर्व भी अनेक प्रकार की क्रियाएँ और प्रार्थनाएँ की जाती थीं ताकि नाटक निर्विघ्न समाप्त हो सके। पहले सर्व प्रथम विघ्नों के शमन के लिए पूर्व रंग किया जाता है। इसके पश्चात् नान्दी होता है जिसमें देवता आदि का आशीर्वाद होता है, सामाजिकों को प्रसन्न किया जाता है और कवि के कुल-गोत्र आदि का वर्णन किया जाता है। इसके पश्चात् प्रस्तावना या आमुख होता है जिसमें नट और नटी आपस के वार्तालाप द्वारा दिखाई जाने वाली कथा की सूचना दी जाती है। प्रस्तावना के पाँच प्रकार हैं। नाटक में वही वस्तुएँ दिखानी चाहिए जो रंगमंच पर दिखाई जा सकें। लड़ाई, हत्या आदि के दृश्य नहीं होने चाहिए क्योंकि यह रंगमंच पर नहीं दिखाए जाते।

नाटक की सम्पूर्ण कथा-वस्तु को तीन तत्त्वों में बाँटा गया है—वस्तु, नायक और रस। नाटक सुखान्त होना आवश्यक है और अन्त में मधुर-फल की प्राप्ति होनी चाहिए। कथा की ये पाँच अवस्थाएँ मानी गई हैं—

आरम्भ, प्रयत्न (फल—प्राप्ति के लिए),

प्राप्त्याश (फल की प्राप्ति की आशा),

नियताप्ति (जहाँ फल की प्राप्ति निश्चित हो) और

फलागम (फल की प्राप्ति)।

फल का अधिकारी नायक होता है इसलिए उसे अधिकारी भी कहा जाता है।

पाश्चात्य नाट्य-रचना से सिद्धान्त

पश्चिम की जातियों को अपने जीवन में आरम्भ से ही संघर्ष उठाना

पड़ा है। इसलिए उन्होंने नाटक में विरोध और संघर्ष को ही प्रधानता दी। इसी के अनुरूप ही उन्होंने कथा-वस्तु की पाँच अवस्थाएँ मानी हैं—१—आरम्भ, २—विकास (विरोध के कारण संघर्ष का विकास), ३—चरमसीमा (विरोध या संघर्ष की चरमसीमा), ४—निगति (विरोध का उतार), और ५—अन्त (विरोध का अन्त)। पश्चिम के कला-शास्त्रियों ने जिस प्रकार सामाजिक जीवन में संघर्ष की प्रधानता को स्वीकार किया, उसी प्रकार व्यक्तिगत जीवन में अन्तर्द्वन्द्व—हृदय के भावों के संघर्ष—को प्रधान माना। भारतीय आचार्यों ने वासनाओं और भावों के साधारणीकरण पर—उनके लोक-सामान्य रूपों पर—बल दिया है, पश्चिम के आलोचकों के व्यक्ति-वैचित्र्य पर जोर दिया। जिस पात्र में सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा जितनी ही विचित्रता होगी, कला की दृष्टि से उसका चरित्र उतना ही श्रेष्ठ है। उसके अतिरिक्त उन्होंने कथा के छः तत्त्व स्वीकार किए—१—वस्तु, २ पात्र, ३—कथोपकथन, ४—देशकाल, ५—शैली और ६ उद्देश्य।

प्रसाद का मत

प्रसाद ने अपने निबन्धों की उपर्युक्त पुस्तक में भारतीय और पाश्चात्य नाटक-रचनाओं के बारे में विचार प्रकट किए हैं जिनसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह पाश्चात्य शास्त्रियों की नाटक-विषयक विरोध-भावना को भारतीय दृष्टि के प्रतिकूल मानते हैं। प्रसाद के अनुसार सारा भारतीय चिन्तन दो धाराओं में विभक्त है—एक आनन्दवादी धारा जिसका प्रतीक इन्द्र था, और द्वितीय दुःखवादी धारा जिसका प्रतीक वरुण था। 'नाटकों के आरम्भ में उन्होंने दिखाया है कि इन्द्र देवता को मानने वाले सम्प्रदाय में ही उसका आरम्भिक रूप मिलता है। साहित्य में रस की स्थापना को प्रसाद आनन्दवादी धारा का साहित्यिक प्रतिरूप मानते हैं। उन्होंने लिखा है—“भारतीय वाङ्मय में नाटकों को ही सबसे पहले काव्य कहा गया है।

काव्यं तावन्मुख्यतो दशरूपात्यकमे (अभिनवगुप्त) शैवागमों के क्रीडात्वे-नाखिलम् जगत् वाले सिद्धान्त का नाट्य-शास्त्र में व्यावहारिक प्रयोग है।

इन्हीं नाट्योपयोगी काव्यों में आत्मा की अनुभूति रस के रूप में प्रतिष्ठित

हुई। अभिनव गुप्त ने कहा है—‘आस्वादनामादनुभवो रसः काव्यार्थमुच्यते।’ नाटकों में भरत के मत से चार ही मूल रस हैं—शृंगार, रौद्र, वीर और वीभत्स। इनसे अन्य चार रसों की उत्पत्ति मानी गई। शृंगार से हास्य, वीर से अद्भुत, रौद्र से करुण और वीभत्स से भयानक। इन चित्तवृत्तियों में आत्मानुभूति का विलास आरम्भिक विवेचकों को रमणीय और उत्कर्षमय मान्य हुआ। नाट्यों में वाणी के छन्द, गद्य और संगीत, इन तीनों प्रकारों का समावेश था। इस तरह आभ्यन्तर और बाह्य दोनों में नाट्य-संघटना पूर्ण हुई।”

वही पृ० ७०-७१

इसके पश्चात् प्रसाद ने आयों की आनन्द प्रधान प्रवृत्ति और सामाजिक कारणों द्वारा उत्पन्न हुई पश्चिमवासियों की दुःखपूर्ण प्रवृत्ति और संघर्षमय जीवन की ओर संकेत किया है। नाट्य-रचना विषयक नवीन रुचियों का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है—

“वर्तमान काल में नाटकों के विषयों के चुनाव में मतभेद है। कथावस्तु भिन्न प्रकार से उपस्थित करने की प्रेरणा बलवती हो गयी है। कुछ लोग प्राचीन रस-सिद्धान्त से अधिक महत्व देने लगे हैं—चरित्र-चित्रण पर। उनसे भी अग्रसर हुआ है। दूसरा दल, जो मनुष्यों के विभिन्न मानसिक आकारों के प्रति कुतूहलपूर्ण है, अथ च व्यक्ति-वैचित्र्य पर विश्वास रखने वाला है। ये लोग अपनी समझी हुई कुछ विचित्रता-मात्र को स्वाभाविक चित्रण कहते हैं, क्योंकि पहला चरित्र-चित्रण तो आदर्शवाद से बहुत घनिष्ठ हो गया है, चारित्र्य का समर्थक है, किन्तु व्यक्ति-वैचित्र्य वाले अपने को यथार्थवादियों में ही रखना चाहते हैं।

यह विचारणीय है कि चरित्र-चित्रण को प्रधानता देने वाले ये दोनों पक्ष रस से कहाँ तक सम्बद्ध होते हैं। इन दोनों पक्षों का रस से सीधा सम्बन्ध तो नहीं दिखाई देता; क्योंकि इसमें वर्तमान युग की मानवीय भावनाएँ अधिक प्रभाव डाल चुकी हैं, जिसमें व्यक्ति अपने को विरुद्ध स्थिति में पाता है। फिर उसे साधारणतः अभेद वाली कल्पना, रस का साधारणीकरण कैसे हृदयंगम हो? वर्तमान युग बुद्धिवादी है, आपाततः उसे दुःख को प्रत्यक्ष सत्य मान लेना पड़ा है। उसके लिए संघर्ष अनिवार्य-सा है।।.....

आत्मा की अनुभूति व्यक्ति और उसके चरित्र-वैचित्र्य को लेकर ही अपनी सृष्टि करती है। भारतीय दृष्टिकोण रस के लिए इन चरित्र और व्यक्ति-वैचित्र्यों को रस का साधन मानता रहा, साध्य नहीं। रस में चमत्कार के आने के लिए इनको बीच का माध्यम-सा ही मानता आया है।”

‘वही पृ० ८४-८५

अज्ञातशत्रु की नाट्यकला

उपरोक्त विवरण के आधार पर अब अज्ञातशत्रु की विशेषताओं को भली-भाँति समझा जा सकता है। स्पष्टतः उसमें भारतीय-नाट्य-सिद्धान्त को ही प्रधानतः अपनाया गया है, किन्तु थोड़े परिवर्तन के साथ। उनमें रंगपूजा, नान्दी और प्रस्तावना का अभाव है। अङ्क भी तीन ही हैं। यद्यपि कम से कम पाँच अङ्क होने चाहिए।

अब यह निश्चय करना चाहिये कि विरोध और अन्तर्द्वन्द्व को स्वीकार करके क्या प्रसाद ने भारतीय और पाश्चात्य सिद्धान्तों के समन्वय का प्रयत्न किया है? सभी विद्वान इस विषय में एक मत हैं कि प्रसाद के नाटकों में हमें पूर्व और पश्चिम का मधुर समन्वय मिलता है। किन्तु जो भी उपरोक्त विवरण को ध्यान से पढ़ेगा, वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि न तो संस्कृत के और पश्चिम के नाट्य-सिद्धान्तों का समन्वय संभव ही है और न वह प्रसाद में मिलता है।

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार नाटक का साध्य है विरोध बाह्य और आन्तरिक तथा व्यक्ति-वैचित्र्य। भारतीय शास्त्र के अनुसार नाटकों का उद्देश्य है रसानुभूति—जो सदैव आनन्द स्वरूप है क्योंकि साहित्य का रस ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है—और साधारणीकरण। न तो रसानुभूति का दुःखमूलक विरोध के साथ सामंजस्य हो सकता है और न ही साधारणीकरण और व्यक्ति-वैचित्र्य वाद का समन्वय संभव है। प्रकाश और अन्धकार का समन्वय कैसे संभव है?

फिर अन्य विद्वान जो यह तर्क देते हैं कि अज्ञातशत्रु में युद्ध, बाहरी संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता पश्चिम के प्रभाव की परिचायक है, उसका क्या

उत्तर दिया जा सकता है ? इसका उत्तर स्वयं प्रसाद जी ने ऊपर उद्धृत पंक्तियों में दिया है । क्या संस्कृत के नाटकों में संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व नहीं मिलता ? किस रूप में ? केवल साध्य के रूप में । रस की अनुभूति तो व्यक्ति के चरित्र वैचित्र्य को लेकर ही अपनी सृष्टि करती है ।' किन्तु भारतीय दृष्टिकोण ने व्यक्ति-वैचित्र्यों को रस का साधन माना, साध्य नहीं । स्पष्टतः प्रसाद के नाटकों में जो संघर्ष की प्रधानता है, वह भारतीय दृष्टि के अनुरूप है, पश्चिम का प्रभाव नहीं है ।

नाट्य-साहित्य में प्रसाद का स्थान

जब हम किसी साहित्यकार का किसी धारा या काल विशेष में स्थान निश्चित करने का प्रयत्न करने को अग्रसर होते हैं तो हमारे सामने दो प्रधान प्रश्न होते हैं—प्रथम, उस साहित्यकार ने अपनी पूर्ववर्ती धारा से क्या ग्रहण किया, उसमें क्या विकास या हास किया, और द्वितीय, उसने अपने वाद के विकास-क्रम को किस रूप में और कितनी दूर तक प्रभावित किया। इन बातों पर विचार करने के लिए यह भी आवश्यक हो जाता है कि हम उस साहित्यकार की आकांक्षा-चिन्ताओं तुलना अन्य साहित्यकारों से करें।

हिन्दी-नाट्य साहित्य के इतिहास को चार कालों में विभाजित किया जाता है—(१) भारतेन्दु काल। २—द्विवेदी काल, ३—प्रसाद काल और ४—प्रसादोत्तर काल। भारतेन्दु काल में स्वयं भारतेन्दु ने सबसे अधिक नाटक लिखे। उन्होंने अन्य लेखकों को भी बहुत प्रेरणा दी। अन्य नाटककारों में सर्व श्री प्रताप नारायण मिश्र, प्रेमघन आदि का नाम ले सकते हैं। इस काल के नाटकों में संस्कृत-नाट्य शैली का गहरा रंग था, स्वगत कथनों का कुरुचिपूर्ण विस्तार था और पद्य वद्ध संवादों का प्रचलन था। गद्य की भाषा खड़ी बोली और पद्य की भाषा ब्रज थी। भाषा की दृष्टि से यह काल अव्यवस्था का काल था। शब्द-कोष का प्रश्न तो सुलभ गया था, व्याकरण की व्यवस्था नहीं हो पाई थी। नाटकों की कथाएं ऐतिहासिक, पौराणिक, कल्पित सभी प्रकार की थीं। नवीन राष्ट्रीय-चेतना भी उनमें मुखर हुई थी। भारतेन्दु के नाटकों को छोड़कर अन्य नाटकों में कला शिथिल है। द्विवेदी युग में नाट्य-साहित्य में संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला तीनों भाषाओं के नाटकों के अनुवाद किए गए। मौलिक नाटकों में माखनलाल चतुर्वेदी का 'कृष्णाजुन युद्ध' की प्रशंसा हुई। भाषा में कोई विशेष कला नहीं थी, कला में कोई विशेष उत्कर्ष नहीं था।

इसके पश्चात् प्रसाद काल आता है। प्रसाद जी का इतिहास-ज्ञान विशद और दर्शन-ज्ञान गंभीर था। उन्होंने अपने नाटकों की सभी कथाएँ भारत के प्राचीन इतिहास से ग्रहण कीं। राष्ट्र-जागरण के उस काल में यह आवश्यक था कि अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृति की और बढ़ती हुई निर्बोध जनता को अपने देश की अतीत महिमा से परिचित करा दिया जाए। प्रसाद की भाषा में जो शक्ति और सौंदर्य है वह आगे चलकर दिखाई नहीं दिया। प्रसाद की नाट्य-कला सबल और रमणीय है। जयनाथ नालिन ने लिखा है—नाटक को स्वस्थ, साहित्यिक, बलापूर्ण, स्वाभाविक मौलिक और स्वाधीन रूप देने का सर्व प्रथम श्रेय प्रसाद की प्रतिभा का है।” प्रसाद के नाटकों में समाज के धार्मिक राजनैतिक, और सामाजिक आन्दोलनों के साथ-साथ व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व का भी मनोहर उद्घाटन हुआ है। प्रसाद की दृष्टि में एक संतुलन है जो विषय के प्रत्येक अङ्ग का उचित मूल्याङ्कन कर उसकी स्पृहणीय अभिव्यक्ति करता है। प्रसाद में प्रतिभा की प्रखरता है, व्यक्तित्व की गंभीरता है, भावुकता की प्रभावात्मकता है और है चिन्तन की विशदता उनमें जहाँ एक ओर गद्यकार की विराट् दृष्टि है, वहाँ कवि का मर्मस्पर्शी सौन्दर्य भी। उनमें गद्यकार और कवि का, दर्शन और प्रेम का श्रेय और प्रेय का पूर्ण सामंजस्य है।

प्रायः यह कहा जाता है कि इतिहास-प्रेमी साहित्यकार वर्त्तमान की उपेक्षा करता है। जो इतिहास के गौरव को स्वीकार करते हैं वे भी वर्त्तमान की उपेक्षा के लिए ऐसे साहित्यकारों से चिढ़ जाते हैं। जब वे प्रसाद में वर्त्तमान की उपेक्षा का दोष दिखाते हैं, तो उनके व्यक्तित्व से अभिभूत होकर, ‘ध्रुव स्वामिनी’ में प्रदर्शित ‘वैवाहिक जीवन’ की समस्या को पेश करते हुए यह कहते हैं कि प्रसाद ने अपने युग की उपेक्षा नहीं की है। क्या प्रसाद के अन्य सभी नाटक अपने युग से विमुख हैं? इस प्रश्न पर आगे विस्तार पूर्वक विचार करते हुए यह प्रमाणित किया जायगा कि अन्य नाटकों में प्रसाद ने अपने समय की जलती समस्याओं को पूरी तरह सुलभाने का प्रयत्न किया है। प्रसाद कोरा अतीत संस्कृति का भव्य संदेश सुनाने वाला दूत ही नहीं है वरन् वर्त्तमान समस्याओं को हल करने वाला यग-सचेष्ट चिन्तक भी है।

प्रसाद काल में ही बदरीनाथ भट्ट का 'दुर्गावती' उग्र का 'महात्मा ईसा' उदयशंकर का 'विक्रमादित्य' आदि नाटक छप चुके थे। सभी पर प्रसाद का यथेष्ट प्रभाव लक्षित होता है। प्रसादोत्तरकालीन नाटकों में सर्व श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' लक्ष्मी नारायण मिश्र, सेठ गोविन्द दारा, गोविन्द वल्लभ पन्त, उदयशंकर भट्ट आदि नाटककार हुए जिन्होंने ने अपनी प्रतिभा द्वारा नाट्य-साहित्य को विशेष श्रीवृद्धि की। प्रसादोत्तर काल की सबसे बड़ी विशेषता साहित्य द्वारा राष्ट्रीय-चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति है। ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, गोविन्द वल्लभ पन्त आदि में चलती रही। मुगल कालीन भारत का इतिहास नाटकों में प्रदर्शित किया जाने लगा। प्रेमी जी ने हिन्दू मुस्लिम एकता का बड़ा मार्मिक उद्घाटन अपने नाटकों में किया है। उदयशंकर भट्ट ने भारत की अवनति के कारणों पर प्रकाश डाला। उपेन्द्र नाथ अशक ने सामाजिक नाटकों की आवश्यकता पर विशेष बल दिया। उन्होंने वर्तमान शिक्षा के दुष्प्रभाव की, विवाह समस्या की कुटिल घुटन की, तथा समाज द्वारा नारियों के कुचल जाने की, कई सामाजिक समस्याएँ उठाई हैं। प्रसादोत्तरकालीन नाटकों में प्रसाद के विरोधी चिन्तन को नाटकों में मुखरित करने वाले लक्ष्मी नारायण मिश्र का विशेष स्थान है। उन्होंने बुद्धिवाद के सहारे जीवन की सारी समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया। बुद्धिवाद के द्वारा वह समस्याओं को जिस विश्वास के साथ हल करके सामने रख देते हैं, उन्हें उसी विश्वास से ग्रहण नहीं किया जा सकता। प्रसादोत्तर कालीन नाटकों में ये दो विशेष बातें दिखाई देती हैं—प्रथम जब नाटकों की सुविधा के अनुसार हिन्दी का रंगमंच न बनाया गया तो विवश होकर इन नाटककारों को रंगमंच को ध्यान में रखकर नाटक रचने पड़े। पर रंगमंच तब भी न बना। द्वितीय, किसान, मास्टर आदि को भी नाटकों का नायक बनाने की प्रवृत्ति होने लगी। विदेशी नाटककारों—इन्सन, शा, गाल्सवर्दी आदि का भी विशेष प्रभाव पड़ा। रेडियो 'रूपक भी लिखे जाने लगे। प्रसाद द्वारा प्रवाहित सभी धाराएँ पुष्ट और पारिमार्जित होने लगी। इतना सब होते हुये भी कोई नाटककार ऐसा न हुआ जो प्रसाद के स्थान को ले सके।

अतीत चिंतन और वर्तमान चेतना

जयशङ्कर प्रसाद की प्रत्येक कृति में दर्शन की छाप दिखाई देती है। अजातशत्रु में भारतवर्ष का लोकनायक और पौराणिकों का अंशावतार, महात्मा बुद्ध संसार के कल्याण में दिखाई देता है। दर्शन पर विश्वास करते हुए भी, परलोक पर दृढ़ आस्था रखते हुये भी प्रसाद की समाज प्रगति की ओर से अपनी आँखें बन्द नहीं करता। अजातशत्रु के चिन्तन को समझाने के लिये यह आवश्यक है कि संक्षेप में महात्मा बुद्ध के युग और उनके चिन्तन का विवरण प्रस्तुत कर दिया जाए।

जिस समय बुद्ध का जन्म हुआ, सारा देश विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा में व्यस्त रह कर भी पीड़ित था। वेदों की प्रेरणा भुला दी गई थी। उनके आदर्शों का स्वार्थ पूर्ति के लिए उपयोग हो रहा था। एक वर्ग विशेष ब्राह्मण सारी जनता को वेदी की दुहाई देकर लूट रहा था। अन्धविश्वास के बादल घिरे थे। हिंसापूर्ण यज्ञों के प्रति क्षोभ का तूफान उठ खड़ा हुआ। तत्त्व के संकीर्ण विवेचन में नैतिक मर्यादा भुला दी गई थी। दर्शन ने सदाचार की उपेक्षा ही नहीं की, स्वार्थ-परक कर्मों को बढ़ावा भी दिया। ऐसे युग में बुद्ध का जन्म हुआ। उन्होंने सोचा कि ईश्वर की सत्ता के विषय में विवेचन करने की अपेक्षा यह कहीं अधिक आवश्यक है कि नैतिक मूल्यों का दृढ़ स्थापन किया जाए, क्योंकि जनता संकीर्ण दार्शनिक उलझनों से ऊब उठी थी और किसी सुखद और सुरम्य सत्य को स्वीकार करने के लिए लालायित थी। महात्मा बुद्ध ने उनको ईश्वर या आत्मा के अस्तित्व अनस्तित्व की उलझन में न डालकर उन्हें कष्ट और विश्वमैत्री का संदेश दिया। शाश्वत प्रश्न का शाश्वत हल खोजा और उसे अनता पर लादा नहीं वरन उसे स्वयं उसकी उपयोगिता परखने के लिए प्रेरित किया। इसी के फलस्वरूप अजात-

शत्रु नाटक में करुणा और विश्वमैत्री के दिव्य सिद्धान्तों की घोषणा दिखाई देती है ।

दो प्रधान चरित्र हमें करुणा और विश्वबन्धुत्व के सिद्धान्तों के प्रभाव में लेकर गिरे हुए चरित्रों का उद्धार करते दिखाई देते हैं । एक हैं महात्मा बुद्ध और दूसरी है साक्षात् करुणा की मूर्ति मल्लिका ।

महात्मा बुद्ध द्वारा प्रतिष्ठित आदर्श मुख्यतः एक है—करुणा या विश्व-मैत्री । सामान्य दृष्टि से देखने पर इन दोनों में भेद है किन्तु तात्त्विक दृष्टि पर देखने से ज्ञात होता है कि दोनों वस्तुतः एक ही आदर्श के दो रूप हैं । बिना करुणा के विश्वमैत्री सम्भव नहीं है और बिना विश्वमैत्री के करुणा का परिपाक नहीं हो सकता है । दोनों में जो भेद प्रतीत होता है उसका कारण यह है कि एक ही पूर्ण मनुष्यता का आदर्श जब व्यक्ति-पक्ष में देखा जाता है वह करुणा कहलाता है और जब उसे ही समष्टि-पक्ष में देखते हैं, वह विश्व-मैत्री या वसुधैव-कुटुम्बुकुम् के आदर्श का रूप ग्रहण करता है । करुणा की अभिव्यक्ति विश्वमैत्री के रूप में होती है । एक स्थान पर मल्लिका कहती है कि 'जिसके हृदय में विश्वमैत्री द्वारा करुणा का उद्रेक हुआ है, उसे अपकार का स्मरण क्या कभी अपने कर्त्तव्य से विचलित कर सकता है ?' इस कथन का प्रथम अंश समझनेकी आवश्यकता है । ऊपर यह कहा गया है कि करुणा की अभिव्यक्ति ही विश्वमैत्री में होती है । किन्तु करुणाकी साधना कैसे करनी होगी ? किस साधना द्वारा मनुष्य इस आदर्श को प्राप्त कर सकता है ? इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि ज्यों ज्यों मनुष्य संसार के अन्य प्राणियों के प्रति उदार एवं सहिष्णु होता जाएगा, उसे करुणा की प्राप्ति होने लगेगी । व्यवहार में विश्वमैत्री की साधना ही व्यक्तित्व को करुणा-प्राप्ति है ।

अब प्रश्न यह किया जाता है कि विश्वमैत्री द्वारा करुणा की साधना जीवन के संघर्ष से विमुक्त करती है । सामान्य मनुष्य के लिए इसकी साधना असम्भव है । इसी शंका को कारायण प्रकट करता है—

“आप देवी हैं । सौर मण्डल से भिन्न जो केवल कल्पना के आधार पर स्थिर है, उस जगत की बातें आप सोच सकती हैं । किन्तु, हम इस संघर्षपूर्ण जगत के जीव हैं, जिसमें कि शून्य भी प्रतिध्वनि देता है । जहाँ किसी को बेग

से कंकड़ी मारने पर वह—कंकड़ी मारने वाले की ओर—लौटने की चेष्टा करती हैं ।”

पृ० ६१

इस आक्षेप का उत्तर प्रसाद ने भाषा द्वारा नहीं, मल्लिका के प्रत्यक्ष व्यवहार द्वारा दिया है । अपने पति की हत्या करने वाले प्रसेनजित और विरुद्धक को क्षमा करती है ।

यहीं से इसका आक्षेप जन्म लेता है । क्या अपराधियों को क्षमा करने पर क्या अपराध का पोषण नहीं होगा ? यदि पापको दण्ड नहीं दिया जाएगा तो क्या यह उसका अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन नहीं हो जाएगा ? गौतमबुद्ध स्वयं इसका निराकरण करते हैं—

“राजन् ! शुद्ध बुद्धि तो सदैव निर्लिप्त रहती है । केवल साक्षी-रूप से वह सब दृश्य देखती है । तब भी, इन सांसारिक भगडों में उसका उद्देश्य होता है कि न्याय का पक्ष विजयी हो—यही न्याय का समर्थन है । तटस्थ की यही शुभेच्छा सत्व से प्रेरित होकर समस्त सदाचारों की नींव विश्व में स्थापित करती है । यदि वह ऐसा न करे तो अप्रत्यक्ष रूप से अन्याय का समर्थन हो जाता है—हम विरक्तों को भी इसीलिए राजदर्शन की आवश्यकता हो जाती है ।”

पृ० ३०

यहीं पर इस आक्षेप का भी खण्डन किया गया है कि आध्यात्मिक विरक्ति अपने मूल में पलायन को पालती है । चाहे विरक्तों की बुद्धि निर्लिप्त है किंतु वह न्याय का समर्थन करती है । साक्षी रूप से रहते हुए भी वह अपने स्वभाव की प्रेरणा से ही सत्य को पुष्ट किया करती है । शुद्ध बुद्धि निसर्गतः उन प्रयत्नों में लीन रहती है जो सदाचार को सुदृढ़ करते हैं ।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य बातों पर भी प्रकाश डाला गया है । विश्व-मैत्री की प्राप्ति के लिए सबसे पहला साधन है वाणी के संयम का—“वाक्-संयम विश्वमैत्री की पहली सीढ़ी है (गौतम)” । वाक्-संयम की जितनी आवश्यकता उस प्राचीन युग में थी, उतनी ही आज भी है । इससे कोई भी इन्कार नहीं कर सकता । एक स्थान पर गौतम ने यह भी कहा है कि दूसरे व्यक्तियों के पाप-कर्मों को ध्यान करने से भी चित्त पर मलिन छाया पड़ती है आज के नर-नारी दूसरों की निन्दा में कितना रस लेते हैं । उनके लिए यह

एक आदेश है ।

अब एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न सामने आता है—क्या अज्ञातशत्रु में प्रसाद ने वर्तमान चेतना की पूर्ण उपेक्षा की है ? इस प्रश्न पर जितना गहन विचार होना चाहिए था वह नहीं हुआ ।

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें अतीत और वर्तमान के मूल सम्बन्ध के प्रश्न पर विचार करना चाहिए । क्या अतीत का वर्तमान से कोई सम्बन्ध नहीं है ? क्या बुद्धकालीन मानव-समाज की जो समस्याएँ थीं वे आज के समाज में क्या बिल्कुल नहीं हैं ? क्या मानव-समाज की कुछ समस्याएँ ऐसी नहीं हैं जो किसी न किसी रूप में प्रत्येक युग में प्रकट होती ही रहती हैं । एक दो नहीं अनेक ऐसी समस्याएँ हैं जिन्हें अज्ञातशत्रु में हल करने का प्रयत्न किया गया है और जो वर्तमान समाज की समस्याओं का हल प्रस्तुत करती हैं 'अज्ञातशत्रु' के युग की कई बुराइयाँ आज के युग की भी बुराइयाँ हैं । नारी-समस्या, युद्धों की समस्या, ऊँच-नीच की समस्या, बुरे सन्यासियों की समस्या आदि अनेक समस्याएँ हैं जो जितनी 'अज्ञातशत्रु' के युग की हैं, उतनी ही आज के युग की भी हैं ।

१--नारी समस्या

प्रसाद ने नारी समस्या के विभिन्न पहलुओं को लिया है । नारी का एक रूप है सपत्नी और विमाता का रूप जो वर्तमान भारत में आज भी दिखाई देता है । प्रसाद ने यह दिखाया है कि किस प्रकार सौतिया-डाह कुलों में विद्रोह की आग लगा देता है और अनर्थ करा देता है । उदाहरण के लिए वासवी, छलना और पद्मावती, मागधी का सौतिया डाह । दोनों के ही कारण विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं । छलना एक क्षुद्र सौत की प्रतिनिधि हैं, जिसके जहर को काटने के लिए वासवी जैसे उदार और क्षमाशील हृदय की आवश्यकता है । छलना का जैसा व्यवहार पद्मावती के साथ है, ठीक विपरीत व्यवहार वासवी का अज्ञात के साथ है । सामाजिक वासवी के साथ ही होता है । इसका यह अभिप्राय नहीं लगाना चाहिए कि प्रसाद ने बहु-विवाह का समर्थन किया है । अज्ञातशत्रु में तो इसके समर्थन और खण्डन का अवसर ही नहीं आ सकता । प्रसाद ने तो केवल यह दिखाया है कि इस समस्या के

प्रस्तुत होने पर उसकी ज्वाला से कैसे बचा जाए ! वैसे मागन्धी और छलना के कुटिल व्यवहार से यह सीधी ध्वनि तो निकलती ही है कि बहु-विवाह में अनेक बुराईयाँ हैं ।

पति-पत्नी के सम्बन्धों पर भी यथेष्ट प्रकाश पड़ता है । जहाँ तक पति से व्यवहार का सम्बन्ध है छलना एक वर्ग की प्रतिनिधि है और वासवी दूसरे वर्ग की । वासवी का पति-प्रेम उसका सर्वस्व है और उसके पति का भी बहुत कुछ । शक्तिमती और दीर्घकारायण के वार्तालाप (तीसरा अङ्क, चौथा दृश्य पृ० १२३) में तो लेखक पति-पत्नी की समस्या से आगे बढ़कर स्त्री और पुरुष के व्यापक संघर्ष को दिखाकर उसके समाधान में तल्लीन दिखाई देता है । कला की दृष्टि से इस वार्तालाप का विधान अनुपयुक्त जान पड़ता है । किन्तु इसमें प्रसाद की युग-सचेष्टता स्पष्टतः मुखरित है । आज भी स्त्री-पुरुष के समान अधिकार प्राप्त करना चाहती है और इसी आकांक्षा के फल-स्वरूप स्त्रियों और पुरुषों के बीच संघर्ष बढ़ता चला जा रहा है । अब तो सरकार भी हिन्दू कोड बिल बनाकर स्त्रियों की आजादी के लिए कानून बना रही है । शक्तिमती एक ऐसी ही उग्र नारी है जो अपने पति के विद्रोह में ही पुरुष-मात्र का विद्रोह करने पर उतारू हो जाती है । वह पुरुषों के प्रति नारी के क्षोभ की व्यंजना इन शब्दों में करती है—

“यदि पुरुष इन कामों को कर सकता है, तो स्त्रियाँ क्यों न करें ? क्या उन्हें अन्तःकरण नहीं हैं ? क्या स्त्रियाँ अपना कुछ अस्तित्व नहीं रखती ? क्या उनका जन्म-सिद्ध कोई अधिकार नहीं है ? क्या स्त्रियों का सब कुछ, पुरुषों की कृपा से मिली हुई भिक्षा मात्र है ? मुझे इस तरह पदच्युत करने का किसी को क्या अधिकार था ?”

×

×

×

“क्या हम पुरुषों के समान नहीं हो सकतीं ? क्या चेष्टा करके हमारी स्वतन्त्रता नहीं पद-दलित की गई ?”

पृ० १२४

दीर्घकारायण ने इसके उत्तर में दो बातें कहीं । प्रथम तो यह सभी पुरुष स्वार्थी नहीं होते एवं समाज में लुद्र स्त्रियों की भी कमी नहीं होती ।
द्वितीय—

विश्वभर में सब कर्म सबके लिए नहीं हैं, इसमें कुछ विभाग हैं अवश्य। सूर्य अपना काम जलता-बलता हुआ करता है और चन्द्रमा उसी आलोक को शीतलता से फैलाता है। क्या उन दोनों में परिवर्तन हो सकता? मनुष्य कठोर परिश्रम करके जीवन संग्राम में प्रकृति पर यथाशक्ति अधिकार करके भी एक शासन चाहता है, जो उसके जीवन का परम-ध्येय है, उसका एक शीतल विश्राम है। और वह, स्नेह, सेवा करुणा की मूर्ति तथा सांत्वना के अभय-वरद हस्त का आश्रय, मानव-जीवन की सारी वृत्तियों की कुंजी, विश्व शासन की एकमात्र अधिकारिणी प्रकृति-स्वरूपा स्त्रियों के सदाचारपूर्ण स्नेह का शासन है। उसे छोड़कर असमर्थता, दुर्बलता प्रकट करके इस दौड़-धूप में क्यों पड़ती हो देवि! तुम्हारे राज्य की सीमा विस्तृत है और पुरुष की संकीर्ण कठोरता का उदाहरण है—पुरुष और कोमलता का विश्लेषण है—स्त्री जाति। पुरुष क्रूरता है तो स्त्री करुणा है—जो अन्तर्जगत का उच्चतम विकास है, जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे हुए हैं। इसीलिए प्रकृति ने उसे इतना सुन्दर और मन-मोहक आवरण दिया है—रमणी का रूप। संगठन और आधार भी वैसे ही हैं। उन्हें दुरुपयोग में न ले आओ। क्रूरता अनुकरणीय नहीं है, उसे नारी जाति जिस दिन स्वीकृत कर लेगी उस दिन समस्त सदाचारों में विप्लव होगा। फिर कैसी स्थिति होगी? यह कौन कह सकता है?

पृ० १२५

आगे चलकर मल्लिका भी उसे यही सन्देश देती है कि स्त्रियों का कर्तव्य है कठोर पुरुषों में दया और करुणा का संचार करना। उन्हें व्यर्थ स्वतन्त्रता और समानता का अहंकार करके अपने इस अधिकार से वंचित नहीं होना चाहिए। स्पष्टतः प्रसाद के मत में स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं। स्त्री पुरुष की गुरु है। महात्मा गांधी स्त्री-पुरुष दोनों को एक दूसरे का गुरु मानते हैं।

प्रसाद ने स्त्री जीवन की एक सबसे दर्दनाक समस्या वैधव्य समस्या को भी मल्लिका के चरित्र में दिखाया है। पति की मृत्यु का समाचार पाकर मल्लिका की यह दशा है—“हृदय थरथरा रहा है, कंठ भरा आता है—एक निर्दय चेतना सब इन्द्रियों को अचेतन और शिथिल बनाए दे रही है।”

नारी जीवन का यह 'कठोर अभिशाप' आज भी भारतीय नारी समाज के लिए भीषण शाप है। स्त्री कैसे इससे मुक्ति पाए ? यह मल्लिका के चरित्र में ही दिखाया गया है। विधवा के पुनर्विवाह की ओर प्रसाद ने इस नाटक में रुचि नहीं दिखाई। किन्तु पति के सोहाग से वंचित हो जाने पर अपने जीवन को परोपकार में लगाना चाहिए। समाज सेवा ही उनका लक्ष्य होना चाहिए यह सत्य है कि वैधव्य जीवन का यह एक उत्तर है। मल्लिका आदर्श रमणी है। उसका अपने मन पर पूर्ण अधिकार है। यदि कोई विधवा स्वाभाविक वासनाओं को न जीत पाए तो वह क्या करे, ऐसी स्थिति इस नाटक में आती ही नहीं है। नारी-जीवन का समग्र चरित्र प्रसाद ने 'ध्रुव-स्वामिनी' में उतारा है।

नारी-जीवन की एक अन्य भीषण-समस्या—वेश्या-जीवन का भी चित्रण अज्ञातशत्रु में किया गया है। राजरानी मागन्धी ही काशी की श्यामा वेश्या बन जाती है। श्यामा के जीवन में वेश्या बनने का कारण था रूप का गर्व। अज्ञातशत्रु में उन वेश्याओं की समस्या उठाने का प्रश्न ही नहीं था जो समाज के अत्याचारों से विवश होकर अपनी लाज का व्यापार करने लगती हैं। किन्तु श्यामा का जीवन भी नारी जीवन की एक ऐसी दुर्बलता की ओर संकेत करता है जिसके परिणाम हमेशा ही भयंकर होते हैं। श्यामा श्यामा पत्नी के समान स्वतन्त्र रहने में ही प्रसन्नता का अनुभव करती है। किन्तु उसके जीवन में एक अवसर ऐसा भी आता है जब उसे अतृप्ति की आग में ही प्रेम की शीतलता का अनुभव होता है। प्रसाद की सामाजिक चेतना के मूल्यांकन में यह अवसर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सामान्य व्यक्ति की दृष्टि में वेश्या का जीवन केवल पाप की लम्बी कहानी होती है। वह कभी यह सोचने का प्रयत्न ही नहीं करता कि उसका भी हृदय है और उसमें स्त्री-मुलभ संवेदना के कुछ निशान बाकी रह जाते हैं। जब श्यामा विरुद्धक से प्रेम की भीख मागती है तो वह सामान्य व्यक्ति के इसी विचार को प्रकट करता है--

“तुमसे मिलने में मैं इसलिए डरता था कि तुम रमणी हो और वह भी

वारविलासिनी ; मेरा विश्वास है कि ऐसी रमणियाँ डाकुओं से भी भयानक होती हैं ।”

इस पर श्यामा उत्तर देती है--

“तो क्या अभी तक तुम्हें मेरा विश्वास नहीं ? क्या तुम मनुष्य नहीं हो, आन्तरिक प्रेम की शीतलता ने तुम्हें कभी स्पर्श नहीं किया ? क्या मेरी प्रणय भिन्ना असफल होगी ? जीवन की कृत्रिमता में दिन-रात प्रेम का बनिज करते-करते क्या प्राकृतिक स्नेह का स्रोत एक बार ही सूख जाता है ? क्या वारविलासिनी प्रेम करना नहीं जानती ?”

पृ० ७२

प्रसाद ने वेश्या जीवन के अन्तस्तल के संघर्ष को सहानुभूति के साथ देखा है और प्रदर्शित किया है। इस यथार्थवादी दृष्टिकोण का प्रसाद साहित्य में समुचित अध्ययन नहीं किया गया।

प्रसाद ने प्रेम का महत्त्व भी प्रदर्शित किया है। इस बात में वह अपने युग की प्रेम विरोधी प्रवृत्ति का विरोध करते दिखाई देते हैं। द्विवेदी युग में जो रीतिकालीन शृङ्गार भावना के प्रति विद्रोह हुआ उसने साहित्य से प्रेम को हमेशा के लिए निकाल देना चाहा। प्रेम साहित्य का रस ही नहीं जीवन की भी शक्ति है। जब वाजिरा अजातशत्रु के प्रति आकर्षित होती है तो वह कहती है--

“अहा ! जीवन धन्य हो गया है। अन्तःकरण में एक नवीन स्फूर्ति आ गई है ! एक नवीन संसार इसमें बन गया है। यही यदि प्रेम है तो अवश्य स्तुहणीय है, जीवन की सार्थकता है’ कितनी सहानुभूति, कितनी कोमलता का आनन्द मिलने लगा है ।” ११३ और अजात भी उसके प्रेम की अनुभूति कर कहता है--

“सुनता था कि प्रेम द्रोह को पराजित करता है। आज विश्वास भी हो गया। तुम्हारे उदार प्रेम ने मेरे विद्रोही हृदय को विजित कर लिया है ।” पृ० ११५

२—युद्धों की समस्या

सारा संसार युद्धों से आतंकित है। युद्ध की भीषणता से समाज पर दुख और पीड़ा के पहाड़ टूट पड़ते हैं। यदि युद्ध न हों तो मानव जीवन कितना

सुखी और शान्त हो । जब अज्ञातशत्रु पहली बार युद्ध से लौटकर आता है और उसकी माँ छलना उसे फिर से युद्ध में प्रेरित करती है तो वह उत्तर देता है—

“माँ ! क्षमा हो । युद्ध में बड़ी भयानकता होती है, कितनी स्त्रियाँ अनाथ हो जाती हैं । सैनिक जीवन का महत्वमय चित्र न जाने किस षड्यन्त्रकारी मस्तिष्क की भयानक कल्पना है । सभ्यता से मानव की जो पाशव-वृत्ति दबी हुई रहती है, उसी को इसमें उत्तेजना मिलती है । युद्धस्थल का दृश्य बड़ा भीषण होता है ।” पृ० १०६

वाजिरा भी कहती है—

“क्या विप्लव हो रहा है !.....अन्धी जनता अंधेरे में दौड़ रही है ।.... मनुष्य मनुष्य के प्राण लेने के लिए शस्त्रकला को प्रधान गुण समझने लगा है और उन गाथाओं को लेकर कवि कविता करते हैं । बर्बर रक्त में और भी उष्णता उत्पन्न करते हैं ।”

इस कथन में जहाँ युद्धों की निन्दा की गई है, वहाँ उन कवियों पर भी व्यंग कसा गया है जो राजाओं को युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं । साहित्यकार का उद्देश्य विद्रोह की आग लगाना नहीं है वरन् समाज में मंगल की स्थापना है ।

३—बुरे सन्यासी

देवदत्त और समुद्रदत्त के चरित्र में आज के झूठे सन्यासियों की भी जघन्यता का दृश्य दिखाई दे ही जाता है । सच्चे महात्मा का विरोध करना, राजशक्ति और सम्मान के लिए जाल फैलाना, पाखण्डपूर्ण आचरण करते हुए भी सच्चा सन्यासी कहलाना आदि दुर्गुण देवदत्त में दिखाई देते हैं । उसका शिष्य तो और भी आगे बढ़ा हुआ है और श्यामा के रूप के मोह में पड़कर बलि का बकरा बन जाता है ।

४—पूर्ण मनुष्यत्व का आदर्श

लेखक का आदर्श है पूर्ण मनुष्यत्व । वह जनता को जीवन से विमुख नहीं करना चाहता, व्यक्ति को किसी काल्पनिक लोक या शक्ति को आदर्श बनाने

के लिए नहीं कहता। वह तो चाहता है कि सभी पूर्ण मनुष्य बनने का प्रयत्न करते हैं। श्यामा मल्लिका के विषय में कहती है—‘जिसे काल्पनिक देवत्व कहते हैं—वही तो सम्पूर्ण मनुष्यता है।’ जब अज्ञात मल्लिका के क्षमाशील कर्त्तव्य को देव कर्त्तव्य कहता है, तो वह उत्तर देती है—

“नहीं राजकुमार, यह देवता का नहीं—मनुष्य का कर्त्तव्य है। उपकार, कृष्णा, समवेदना और पवित्रता मानव-हृदय के लिए ही बने हैं।”

पृ० ६५

क्या आज के युग में मनुष्यता का अभाव नहीं है। क्या मनुष्यत्व की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने पर भी संसार में क्षोभ की आग और विद्रोह की जलन रह सकती है? क्या आज के जीवन में मनुष्यता के स्थान पर घन, शक्ति आदि ऐसे लक्ष्य निर्धारित नहीं किए जा रहे हैं जो उसे पतन की गत में गिरा रहे हैं? पश्चिम की विचारधारा है—“To err is human” गलती करना मनुष्य का स्वभाव है। यदि ऐसा है तो विवेक शक्ति का क्या उपयोग है? मनुष्य की मनुष्यता ही यही है कि विवेक द्वारा दोनों को दूर करने का प्रयत्न किया करता है।

इसके अतिरिक्त सभी राष्ट्र वसुधैव कुटुम्बकम् की ओर बढ़ रहे हैं।

५—न्याय व्यवस्था

न्याय-व्यवस्था का उद्देश्य है समाज को विशुद्ध होने से बचाना। उसका पहले भी यही लक्ष्य था और आज भी यही है। किन्तु उसके उद्देश्य की पूर्ति में स्वार्थी और विलासी अधिकारी हमेशा विकट बाधाएँ उपस्थित करते हैं। जब न्याय के अधिकारी ही दुर्बल व्यक्तित्व वाले हों तो न्याय भी दुर्बल हो ही जाएगा। काशी का दंडनायक आज के अनेक रिश्वत-खोर तथा दुराचारी अफसरों से भिन्न नहीं है। एक वेश्या के जरा से कहने पर वह शैलेन्द्र के स्थान पर बेचारे समुद्रदत्त को फाँसी पर लटका देता है। आज भी न्याय और कानून के अलम्बरदारों में ऐसे लोगों की कमी नहीं है।

६—पिता और पुत्र का संघर्ष

अज्ञातशत्रु की कथा के मूल में है पिता और पुत्रों का संघर्ष। पिता अपने अधिकार पुत्र को देना नहीं चाहता और पुत्र बलपूर्वक उससे अधिकार छीन

लेना चाहता है। आज के युग में भी पिता और पुत्र का यह संघर्ष घर-घर की फसादों की जड़ है। इस समस्या का व्यापक विस्तार अज्ञातशत्रु में मिलता है ! अज्ञातशत्रु विम्बसार के विरुद्ध और विरुद्धक प्रसेनजित के विरुद्ध विद्रोह करता है। आज के युग में भी पुत्रों की यह उग्र भावना परिवारों की शान्ति को भंग कर देती है। इसका समाधान एक ही है। और वह यह कि पिता न्याय करे और पुत्र उस पर विश्वास करे। जब मल्लिका विरुद्धक को प्रसेनजित के पास लाना कराने को ले जाती है और जब प्रसेनजित यह कहता है कि विरुद्धक दण्डनीय विद्रोही है तो वह कहती है—

“राजन्, विद्रोही बनाने के कारण भी आप ही हैं। बनाने पर विरुद्धक राष्ट्र का एक सच्चा शुभचिंतक हो सकता था।” पृ० १३० और पुत्र (अज्ञात) के मुख से प्रसाद ने कहलवाया है कि पिता के चरण ही उसका सच्चे सिंहासन है।

७—राष्ट्रीय आंदोलन—बुद्ध और गाँधी

महात्मा गाँधी ने राष्ट्र के स्वतन्त्रता आन्दोलन की नीति सत्य और अहिंसा पर आधारित की। महात्मा बुद्ध में भी हमें इन्हीं दोनों सिद्धान्तों का चरमोत्कर्ष मिलता है। महात्मा गान्धी का सिद्धान्त था हिंसा का उत्तर अहिंसा से दो, यदि कोई तुम पर क्रोध करे, उसे प्रेम से जीतने का प्रयत्न करो। महात्मा बुद्ध भी कहते हैं—

“शीतल वाणी—मधुर व्यवहार— से क्या वन्य पशु भी वश में नहीं हो जाते ? राजन संसार भर के उपद्रवों का मूल व्यंग है। हृदय में जितना वह घुसता है उतनी कटार नहीं। वाक्संयम विश्वमैत्री की पहली सीढ़ी है।” पृ. ३१

गाँधी इस सिद्धान्त पर विश्वास करता था कि शत्रु से भी मित्रतापूर्ण बर्ताव करना चाहिए। मल्लिका प्रसेनजित और विरुद्धक दोनों को लाना कर देती है— लाना ही नहीं करती थी उनके प्राणों की रक्षा भी करती है। और इसका फल यह होता है कि बिछुड़े हुए मिल जाते हैं, दुराचारी सदाचारी बन जाते हैं और अशान्ति की आग में जलते हुए राजपरिवार खिले हुए उपवन बन जाते हैं। इस नाटक को पढ़ने के पश्चात् गाँधी की नीति पर अधिक विश्वास हो जाता है।

प्रसाद की नाट्यकला की सामान्य विशेषताएँ

प्रसाद के सभी नाटकों के कथानक भारत के प्राचीन इतिहास से लिए गए हैं। साहित्यकार के लिए इतिहास एक ठोस आधार भर ही प्रस्तुत करता है। उस आधार के अनुसार ही साहित्यकार को कथा के भवन का निर्माण करना होता है। सामाजिक नाटककारों के लिए आधार सामाजिक समस्याएँ या परिस्थितियाँ ही होती हैं जिनके अनुरोध के अनुरूप ही वे रचनाओं के महल खड़े करते हैं। जहाँ तक आधार का प्रश्न है, उसमें कलाकार की प्रतिभा के निशान नहीं देखे जा सकते। चन्द्रगुप्त के इतिहास के आधार पर ही कितने नाटकों की रचना हुई। पर सब में एक दूसरे से विभिन्नता है। हाँ आधार के चुनाव में हमें कलाकार की एक विशेषता दिखाई देती है और वह है उसकी रुचि। प्रसाद ने बुद्ध और गुप्त कालीन भारत को ही क्यों अपनाया, मुगलकालीन भारत को क्यों नहीं अपनाया? इसका एक उत्तर यही दिया जा सकता है कि आधार के चुनाव के निर्णय में कवि की रुचि ही कार्य करती दिखाई देती है। जब हम नाटककार की विशेषताओं की बात करते हैं, तो हमें आधार पर नहीं उस पर निर्मित भवन पर ही अपनी नजरें गढ़ानी पड़ेंगी। और उस भवन की रचना-कौशल, विस्तार संकोच आदि में नाटककार की प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है। अब प्रसाद की नाट्यकला की विशेषताओं का संक्षिप्त विवेचन किया जाएगा।

१—नाटकीयता

नाटक दृश्यकान्य है—उसका अभिनय किया जाता है। दृश्यकान्य होने के नाते नाटककार को उसकी रचना में कथा के संगठन, घटनाओं के चयन आदि में कुछ बँधकर चलना पड़ता है। आलोचकों का कहना है कि नाटक-

कार को रंगमंच की सुविधा और सामाजिकों की शक्ति का ध्यान रखना चाहिए। और अधिकांश विद्वानों का मत है कि न तो प्रसाद ने रंगमंच का ध्यान रखा है और न ही सामाजिकों का। उन्होंने अपने नाटकों में ऐसे दृश्य दिखाए हैं जो साहित्य-शास्त्रियों द्वारा वर्जित हैं—जैसे बध आदि, और ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जिसे सामान्य सामाजिक समझने में असमर्थ है। अब इन दोनों प्रकार के आरोपों का अलग-अलग उत्तर दिया जाएगा।

पहले इस आरोप को लिया जाता है जिसमें यह कहा गया है कि प्रसाद के नाटक रंगमंच को ध्यान में रखकर नहीं लिखे गये। इसका उत्तर स्वयं प्रसादजी ने ही अपने निबन्धों की पुस्तक 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' में दिया है। उन्होंने लिखा है—

“रंगमंच की बाध्य-बाधकता का जब हम विचार करते हैं, तो उसके इतिहास से यह प्रकट होता है कि काव्यों के अनुसार प्राचीन रंगमंच विकसित हुए और रंगमंचों की नियमानुकूलता मानने के लिए काव्य बाधित नहीं हुए अर्थात् रंगमंचों को ही काव्य के अनुसार अपना विस्तार करना पड़ा और यह प्रत्येक काल में माना जाएगा कि काव्यों के अथवा नाटकों के लिए ही रंगमंच होते हैं। काव्यों की सुविधा जुटाना रंगमंच का काम है। क्योंकि रसानुभूति के अनन्त प्रकार नियमबद्ध उपायों से नहीं प्रदर्शित किए जा सकते और रंगमंच ने सुविधानुसार काव्यों के अनुकूल समय-समय पर अपना स्वरूप परिवर्तन किया है।”

पृ० १०३

प्रसादजी का यह उत्तर बहुतही समीचीन है। क्या आलोचक यह चाहते हैं कि एक रंगमंच में जिन-जिन पदों का प्रबन्ध कर लिया गया है, सभी नाटक उन्हीं पदों पर दिखाए जाएँ ? क्या नाटककार को कथावस्तु के विकास के स्थान पर रंगमंच के पदों के दृश्यों के नियन्त्रण में रहना पड़ेगा ? नाटकों के विषय में यह कथन कि वे प्राचीन रंगमंचों को ध्यान में रखकर दिखाए जाएँ साहित्य की अन्य शैलियों में इस रूप में प्रकट होगा कि साहित्य का निर्माण उसकी प्राचीन कसौटियों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। यदि नाटक में धीरोदात्त दिव्यगुण सम्पन्न नायक के स्थान पर मजदूर या किसान नायक हो सकता है तो क्या रंगमंच में ही तिलमात्र भी परिवर्तन

करने की आवश्यकता नहीं है ? जब सभी क्षेत्रों में नवीन-स्फूर्ति-संचार और अभिनव प्रगति का आग्रह है तो रंगमंचों के विषय में ही पुरातनता का मोह क्यों ? “रंगमंच के सम्बन्ध में यह भारी भ्रम है कि नाटक रंगमंच के लिए लिखे जायँ । प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि नाटक के लिए रंगमंच हों ।”

दूसरा आरोप यह लगाया जाता है कि प्रसाद ने नाटकों की रचना में सामाजिक की शक्ति का ध्यान नहीं रखा । कहा जाता है कि प्रसाद के नाटक लम्बे हैं, उनका अभिनय करने में बहुत देर लगती है । ‘चन्द्रगुप्त’ को छोड़कर यह दोष किसी में नहीं है । और फिर यह अनुमान लगाने का भी तो प्रयत्न होना चाहिए कि चन्द्रगुप्त जैसे लम्बे नाटक को दिखाने में कितना समय लगेगा ? मेरा विचार तो यह है कि नाटक की लम्बाई सामाजिक को तभी खटकेंगी जब उसकी कथा का समुचित विकास न हुआ होगा । और रमणीय व्यापार-योजना के अभाव में तो छोटे नाटक भी सामाजिक को आनन्दित न कर सकेंगे । ‘चन्द्रगुप्त’ का भी घटना व्यापार इतना आकर्षक और चमत्कार-पूर्ण है कि सामाजिकों को देर तक बैठना अखरेगा नहीं । रास और राम-लीला आदि में—जिनका दृश्य-विधान लचर होता है—भी रात-रात भर लोग जमे रहते हैं ।

सामाजिक की सुविधाओं का ध्यान रखकर एक आरोप यह भी लगाया जाता है कि प्रसाद की भाषा इतनी कठिन है कि सामान्य सामाजिक उसे समझ नहीं सकता । इसकी विस्तृत समीक्षा ‘प्रसाद की भाषा’ में की जा चुकी है । यहाँ केवल इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि सामाजिक को आकृष्ट करने वाली चीज है व्यापार-योजना । भाषा की दुरुहता सर्वत्र तो पाई ही नहीं जाती । और फिर आलोचकों को यह भी तो ध्यान रखना चाहिए कि सामाजिक केवल कान से सुनते ही नहीं, आँख से देखते भी हैं । नाटक दृश्य-काव्य है—उसका प्रभाव देखने से ही पूरा-पूरा डाला जा सकता है । हाँ यदि भाषा भावों को व्यक्त करने की शक्ति न रखती हो तो अवश्य भाषा विषयक दोष माना जा सकता । यह दोष निकालना कि प्रसाद की भाषा बहुत सुन्दर और साहित्यिक है इसलिए सामाजिकों की समझ में नहीं आ सकती व्यर्थ-सा मालूम होता है । और फिर आलोचक यह क्यों भूल जाते हैं कि प्रसाद की

भाषा ही कठिन नहीं है वरन् उसके विचार भी इतने गम्भीर और सूक्ष्म हैं कि वे सामाजिक की समझ में बिल्कुल नहीं आ सकते। इस दृष्टिकोण के अनुसार तो विचारधारा की सूक्ष्मता भाषा की कठिनता से भी बड़ा दोष माना जाएगा। और जिन साहित्यकारों के नाटकों में तथाकथित दोष नहीं गिनाए गए हैं, उनके लिए ही कौनसा रंगमंच बनाया गया है ?

२—नियतिवाद

प्रसाद में एक अन्य विशेषता यह बताई जाती है कि वह नियतिवादी या भाग्यवादी हैं। उसके पात्रों को दैव का बड़ा भरोसा रहता है। और यह विशेषता गिना देने के पश्चात् तुरन्त ही यह निर्णय दे दिया जाता है कि प्रसाद पलायनवादी हैं, उसके पात्र जीवन की विषमता से भयभीत होकर, अकर्मण्य हो जाते हैं और नियतिवाद का सहारा लेते हैं।

इस आक्षेप के उत्तर में सबसे पहले यह देखना है कि क्या प्रसाद के सभी पात्र भाग्यवादी हैं ? और उत्तर मिलता है कि नहीं। कब पात्र भाग्यवादी माने जाते हैं उनकी इस विशेषता का निर्णय कैसे किया जाता है ? जहाँ कहीं एक बार भी नियति या भाग्य शब्द आया, तुरन्त यह निश्चय कर लिया जाता है कि वह पात्र भाग्यवादी है। फिर उस पात्र के सारे चरित्र की ओर से ध्यान हटा लिया जाता है। चाहे उसके सारे चरित्र में घोर संघर्ष और निर्भीक साधना भरी हो, किन्तु एक बार नियति शब्द का प्रयोग कर देने से वह नियतिवादी मान लिया जाता है। उदाहरण के लिये मागन्धी अन्त में कहती है—“वाह री नियति ! कैसे-कैसे दृश्य देखने में आए—” और तुरन्त यह निश्चय कर लिया जाता है कि मागन्धी नियतिवादी नारी है। इतने तक तो कुछ ठीक, किन्तु आगे चलकर जब नियतिवाद का सम्बन्ध पलायनवाद से जोड़ दिया जाता है, वहाँ यह निष्कर्ष अग्राह्य हो जाता है। यह ठीक है कि भाग्य पर अन्धविश्वास कर निराश बैठ रहने वाले व्यक्ति भी दिखाई देते हैं। किन्तु यह भी तो सत्य है कि भाग्य का सहारा लेकर घोर से घोर कर्म में प्रवृत्त होने वाले व्यक्ति भी देखे जाते हैं। केवल प्रथम प्रकार के उदाहरणों को लेकर एक सिद्धान्त बना लेना स्वस्थ चिन्तन नहीं कहा जा सकता है।

अज्ञातशत्रु का 'जीवक' भी नियतिवादी है किन्तु वह दूसरे प्रकार का व्यक्ति है जो नीचे के कथोपकथन से स्पष्ट हो जाता है। जब जीवक राजा बिम्बसार के पास आकर संसार से विरक्त होने की इच्छा प्रकट करता है तब बिम्बसार कहता है—

“बिम्बसार—क्या अदृष्ट सोचकर, अकर्मण्य बनकर तुम मेरी तरह बैठ जाना चाहते हो ?”

“जीवक—नहीं महाराज ! अदृष्ट तो मेरा सहारा है। नियति की डोरी पकड़कर मैं निर्भय कर्म-कूप में कूद सकता हूँ। क्योंकि मुझे विश्वास है कि जो होना है वह तो होगा ही, फिर कायर क्यों बनूँ— कर्म से क्यों विरक्त रहूँ— मैं उच्छृङ्खल नवीन राजशक्ति का विरोधी होकर आपकी सेवा करने आया हूँ।” पृ० ३७-३८

३—गीतों का प्रयोग

प्रसाद ने अपने नाटकों में गीतों का भी प्रयोग किया है। इस विषय में विद्वानों का मत है कि अधिकांश गीत केवल गीत लिखने के उद्देश्य से ही लिखे गए हैं। प्रसाद गद्यकार भी हैं और कवि भी। नाटकों में स्थान-स्थान पर उनका कवित्व मुखर हो उठा है। कवित्व की झलक दो रूपों में मिलती है। प्रथम अलंकृत गद्य भाषा में और दूसरा गीतों में। इस प्रकार प्रसाद ने नाटकों में अपने गद्यकार और कवि दोनों के सामंजस्य का प्रयत्न किया है। किन्तु कवित्व का अधिक हो जाना—गीतों की संख्या बढ़ जाना—आलोचकों की दृष्टि में दोष है।

पहला प्रश्न जिस पर हमें विचार करना है, यह है कि क्या नाटकों में गीतों की कुछ उपयोगिता होती है या नहीं ? इसके उत्तर में सभी स्वीकार करेंगे कि नाटकों में गीतों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है और प्राचीन संस्कृत नाटकों में भी छन्दों का प्रयोग मिलता है। प्रसाद ने पद्य-बद्ध सम्बाद तो बहुत कम कराए, हाँ गीत अवश्य रखे हैं। दूसरा प्रश्न गीतों के अधिक हो जाने से रचना पर क्या बुरा प्रभाव पड़ता है ? तो इस विषय में कहा जाता है कि सामाजिक गीतों को सुनता-सुनता उकता जाता है। इस सत्य से कोई भी इन्कार नहीं करेगा कि यदि गीतों की लय मोहक हो तो वे जनता की विरक्ति

का कारण नहीं बन सकते। इतना ही नहीं, वह नाटक के गौरव को बढ़ाते भी हैं। ऐसी कई पिकचरें मिल जाएँगी जो कहानी के न रहने पर केवल गीतों के माधुर्य के कारण ही सबसे बढ़कर लोकप्रिय हुईं।

प्रसाद के नाटकों में गीतों के प्रयोग पर विचार करते हुए हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि वह अपने युग के ही नहीं, हिन्दी साहित्य के एक महान कवि थे। जिसमें काव्य-प्रतिभा होगी वह नाटकों में सुन्दर गीतों की योजना तो करेगा ही। जो कवि नहीं है वह न तो नाटकों में गीतों की योजना ही कर सकता है और न ही उन्हें नाटकों का अनिवार्य तत्व ही मान सकता है।

अज्ञातशत्रु में दो प्रकार के गीत मिलते हैं। प्रथम, गीतम, भिन्नुओं आदि द्वारा गाए हुए करुणा के शान्ति प्रधान गीत और दूसरे प्रेम के गीत। करुणा के गीतों की संख्या आठ है और प्रेम के गीतों की संख्या ग्यारह है। किन्तु इन दोनों प्रकार के गीतों में अधिकांश एक-एक पद के गीत हैं। उन्हें गीतों की कोटि में वैसे तो नहीं रखा जा सकता, केवल संख्या करने को गिना दिए गए हैं। करुणा के गीतों में 'गोधूली के राग-पटल में स्नेहोंचल फहराती हैं' (पृ० ३०) 'अधीर न हो चित्त विश्व मोह-जाल में' (पृ० ६३) गीत बहुत सुन्दर हैं। कला की दृष्टि से बिम्बसार का प्रकृति का गीत—'चल बसन्त बाला अंचल से किस घातक सौरभ मैं मस्त' (पृ० १४१) गीत बहुत सुन्दर है। प्रेम के गीत प्रायः सभी सुन्दर हैं किन्तु "मीड़ मत खिंचे बीन के तार" (पृ० ५८) उत्कृष्ट कोटि का गीत है। विरुद्धक का पावस ऋतु का गीत (पृ० ११८) भी सुन्दर है। श्यामा के इन दो गीतों में उदूर् की गजलों की सी शब्द योजना और भाव प्रकाशन है—

“बहुत छिपाया, उफन पड़ा अब,

संभालने को समय नहीं है।” पृ० ७३

और “स्वजन दीखता न विश्व में अब, न बात मन में समाय कोई।” पृ० १३६ इसके अतिरिक्त प्रसाद ने उदूर् के शेरों की पद्धति को अपनाया है। जैसे—

पद्मवती हमारा प्रेमनिधि सुन्दर सरल है ।

अमृतमय है, नहीं इसमें गरल है ॥”

इनका अधिक प्रयोग नहीं किया गया

४—प्रकृति चित्रण

अज्ञातशत्रु में प्रसाद ने प्रकृति के भी अनेक दृश्यों का वर्णन किया है । अलङ्कार रूप में प्रकृति-चित्रण का उदाहरण तो प्रेम-प्रधान आवेशमयी भाषा के नमूनों में देखा जा सकता है । इसके अतिरिक्त गीतों में भी प्रकृति-चित्रण हुआ है जैसे श्यामा के गीत में नन्दकानन के रसीले पवन का वर्णन है (पृ० ७६), विरुद्ध के गीत (पृ० ११८) में मेघों का सुन्दर वर्णन हुआ है, और बिम्बसार के गीतों में (पृ० १४१) वसंत के पवन का चित्र खींचा गया है । इसके अतिरिक्त गद्य में प्रकृति-चित्रण की जो मुख्य विशेषता है वह वहाँ दिखाई देती है जहाँ प्रकृति की पृष्ठभूमि में मानवीय भावनाओं का चित्रण किया जाता है । उदाहरण के लिए सृज का तपते बलते हुए और चाँद के शीतल आलोक की बात कह कर पुरुष की उग्रता और स्त्री की सुकुमारता का वर्णन किया गया है । तीसरे प्रकार का प्रकृति का उपयोग वहाँ दिखाई देता है जहाँ प्रकृति के चित्रण के द्वारा गम्भीर सत्यों की उद्भावना की जाती है । जैसे बिम्बसार के इस कथन में—

“आह, जीवन की क्षणभंगुरता देखकर भी मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है, आकाश के नीले पत्र पर नक्षत्रों से लिखे अदृष्ट के लेख जब-धीरे-धीरे लुप्त होने लगते हैं, तभी तो मनुष्य प्रभात समझने लगता है ।” पृ० २८

और

“रात में ताराओं का प्रभाव विशेष रहने से चन्द्रमा नहीं दिखलाई देता और चन्द्रमा का तेज बढ़ने से तारे सब फीके पड़ जाते हैं, क्या इसी को शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष कहते हैं ?”

वासवी—आर्य पुत्र ! मुझे तो यह विश्वास है कि नीला पर्दा इसका रहस्य छिपाए है, जितना चाहता है उतना ही प्रकट करता है ...।” पृ० ८६

प्रकृति के इस प्रयोग द्वारा नाटक की कला का उत्कर्ष बहुत बढ़ गया है।

५—इतिहास और कल्पना

इतिहास की दो प्रसिद्ध व्याख्याएं मान्य हैं। एक हीगेल की इतिहास की आध्यात्मिक व्याख्या और दूसरी मार्क्स की इतिहास की भौतिक व्याख्या। प्रसाद ने इतिहास की अपनी ही व्याख्या की है। प्रथम तो वह इतिहास की घटनाओं की पुनरावृत्ति पर विश्वास रखते हैं। बुद्ध ने जिस कष्ट का प्रचार किया, आधुनिक युग में उसी का प्रचार अहिंसा और सत्य के रूप में महात्मा गाँधी ने किया। जहां तक इतिहास के विकास का प्रश्न है, उसका क्रम इस प्रकार है। मानव-समाज अपनी इच्छा शक्ति के अनुसार कल्पनाएं किया करता है। जब कोई कल्पना किसी व्यक्ति या जाति के अदभ्य साहस का अवलम्ब पाकर समाज में मूर्त अभिव्यक्ति पाती है और इस प्रकार इतिहास की सृष्टि होती है। पहली कल्पना के पूर्ण होने से पूर्व ही समाज की एक नई कल्पना उसका विरोध कर अपनी अभिव्यक्ति की चेष्टा करती है और इतिहास के विकास में एक नया अध्याय खोलती है। उधर पहली कल्पना इस विरोध के कारण रुककर और भी सबल रूप में अपनी अभिव्यक्ति का प्रयत्न करती है और इस प्रकार इतिहास में घटनाओं की पुनरावृत्ति होती है। भारत का प्रामाणिक इतिहास महात्मा बुद्ध से आरंभ होता है और उसका पहला सम्राट है अजातशत्रु। इस प्रकार 'अजातशत्रु' में भारत के ज्ञात इतिहास का आरंभ होता है। उस काल की धार्मिक परिस्थिति के विषय में पीछे कहा जा चुका है। प्रसाद जी ने गौतम बुद्ध के काल के विषय में कहा है—

“पौराणिक काल के बाद गौतम बुद्ध के व्यक्तित्व ने तत्कालीन सम्य संसार में बड़ा भारी परिवर्तन किया। इसलिए हम कहेंगे कि भारत के ऐतिहासिक काल का प्रारम्भ धन्य है, जिसने संसार में पशु-कीट-पतंग से लेकर इन्द्र तक के साम्यवाद की शंख-ध्वनि की थी। केवल इसी कारण हमें अपना अतीव प्राचीन इतिहास रखने पर भी, यहीं से इतिहास काल का प्रारम्भ मानने में गर्व होना चाहिए।” पृ० ७-८

महाभारत के युद्ध के पश्चात् कोई सम्राट नहीं हुआ। हर एक जाति अपने

अपने प्रदेश में स्वतन्त्र थी। प्रत्येक राज्य में एक ही जाति का राज्य था। उनमें से ही मगध, काशी, कोशल, कौशाम्बी हैं। इन सब राज्यों की एकता का कारण बुद्ध द्वारा प्रवर्तित धार्मिक आन्दोलन था जो शक्ति पकड़ता हुआ सारे देश में व्याप्त होगया। बुद्ध ने मध्यम मार्ग का प्रतिपादन किया था जिसमें न तो वैदिक यज्ञों की अहिंसा की प्रधानता थी और नहीं जैनियों की सी पूर्ण अहिंसा थी। इस धार्मिक आन्दोलन ने सारे देश की राजनीति को भी अपने हाथों में ले लिया। बुद्ध राजपुत्र था तथा अन्य अनेक राजाओं ने भी उसके सिद्धांतों को स्वीकार किया। “अजातशत्रु” में आए हुए सभी प्रमुख पात्र ऐतिहासिक हैं। माँगधी के चरित्र में जो कल्पना का योग है उसकी ओर संकेत किया जा चुका है।

प्रसाद का ध्यान उस काल की सामाजिक क्रांति के साथ प्रत्येक व्यक्ति के चरित्र के उद्घाटन की ओर भी रहा है। राजाओं के परिवारों का विशद चित्र मिलता है। बुद्ध और देवदत्त के संघर्ष में बौद्ध-धर्म और जैन धर्म के संघर्ष की व्यंजना हुई है।

यह कहा जा चुका है कि इतिहास और विशेषकर इतने प्राचीनकाल के इतिहास—को आधार मान लेने पर उसमें कल्पना के अधिक योग की अपेक्षा होती है। इतिहास के धूसरित निशानों से युक्त पत्थर में कला की मूर्ति गढ़ना नाटककार की प्रतिभा का ही काम है। और प्रसाद तो “कल्पना और प्रतिभा के कोष” हैं ही।

६—यथार्थ और आदर्श

यथार्थवादी की दृष्टि यह देखती दिखाती है कि सामाजिक जीवन कैसा है (क्यों भी इसमें आगे चलकर मिल जाता है) और आदर्शवादी की प्रतिभा यह अंकित करती है कि सामाजिक जीवन कैसा होना चाहिये। एक आज की ओर देखता है और दूसरा आने वाले काल की ओर।

प्रसाद ने लिखा है “यथार्थवाद की विशेषताओं में प्रधान है लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात। उसमें स्वभावतः दुख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है।” (काव्य-कला तथा अन्य निबन्ध वही पृ० १२०)

लघुता से प्रसाद का अभिप्राय है साहित्य-शास्त्रियों द्वारा निर्धारित महान पात्रों के स्थान पर अपने युग के सामान्य से सामान्य सामाजिक को साहित्य का नायक बनाना। आगे प्रसाद जी ने लिखा है—

‘वेदना से प्रेरित होकर जन-साधारण के अभाव और उनकी वास्तविक स्थिति तक पहुँचने का प्रयत्न यथार्थवादी साहित्य करता है। इस दशा में प्रायः सिद्धान्त बन जाता है कि हमारे दुःखों और कष्टों के कारण प्रचलित नियम और प्राचीन सामाजिक रूढ़ियाँ हैं। फिर तो अपराधों के मनोवैज्ञानिक विवेचन के द्वारा यह भी सिद्ध करने का प्रयत्न होता है कि वे सब समाज के कृत्रिम पाप हैं। अपराधियों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न कर सामाजिक परिवर्तन के सुधार का आरम्भ साहित्य में होने लगता है। स्त्रियों के सम्बन्ध में नारीत्व की दृष्टि ही प्रमुख होकर मातृत्व से उत्पन्न हुए सब सम्बन्धों को तुच्छ कर देती है कुछ लोग कहते हैं साहित्यकार को आदर्शवादी होना ही चाहिए और सिद्धान्त से ही आदर्शवादी धार्मिक प्रवचन कर्ता बन जाता है। वह समाज को कैसा होना चाहिए, यही उपदेश करता है। और यथार्थवादी सिद्धान्त से ही इतिहासकार से अधिक कुछ नहीं ठहरता; क्योंकि यथार्थवाद इतिहास की सम्पत्ति है। वह चित्रित करता है कि समाज कैसा है या था; किन्तु साहित्यकार न तो इतिहास कर्ता है और न धर्मशास्त्र-प्रणेत। इन दोनों के कर्तव्य स्वतन्त्र हैं। साहित्य इन दोनों की कमी को पूरा करने का काम करता है। साहित्य समाज की वास्तविक स्थिति क्या है, इसको दिखाते हुए भी उनमें आदर्शवाद का सामंजस्य स्थिर करता है ! दुःख-दग्ध जगत और आनन्दपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है इसीलिए असत्य अघटित घटना पर कल्पना को वाणी महत्वपूर्ण स्थान देती है, जो निजी सौंदर्य के कारण सत्य-पद पर प्रतिष्ठित होती है। उसमें विश्वमंगल की भावना श्रोतप्रोत रहती है।’

पृ० १२२-२३

ध्यानपूर्वक देखने पर प्रसाद का यथार्थ और आदर्श सम्बन्धी दृष्टिकोण प्रेमचन्द के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से बिल्कुल मिलता-जुलता है। हम निस्संकोच कह सकते हैं कि प्रसाद भी साहित्य में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को स्वीकार करते हैं। ‘सुमित्रानन्दन पंत’ में यह लिख चुका हूँ कि मेरे दृष्टिकोण

के अनुसार यथार्थ और आदर्श प्रगति के दो पहलू भर हैं। यथार्थ में भी प्रगति की भावना निहित है और आदर्श में भी। बिना यथार्थ के प्रगति खोखली है और बिना आदर्श के प्रगति अन्धी है।

देखना यह है कि अज्ञातशत्रु में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का स्वरूप मिलता है या नहीं। आदर्शोन्मुख यथार्थ चित्रण का अर्थ है पात्रों के चरित्र की विशिष्ट गतिशीलता। यह उसी पात्र में दिखाया जा सकता है जिसका चरित्र गतिशील है, जो परिस्थितियों द्वारा प्रभावित है। अज्ञातशत्रु, विरुद्ध और मागधी छलना आदि के यथार्थ चरित्रों का पर्यावसान आदर्श में होता है। उनके जीवन के आरम्भ में हमें विद्रोह का चोम और दुर्बलताओं की उम्रता दिखाई देती है। अन्त में आदर्श की शान्ति सर्वत्र व्याप्त हो जाती है। यहाँ मुख्य प्रश्न यह है कि क्या यथार्थ की आदर्श में यह परिणति स्वाभाविक है या नहीं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि चरित्र के स्वाभाविक विकास के अनुरोध को अस्वीकार करके आदर्श के मोह के कारण लेखक ने पात्र को आदर्श पात्र बना दिया है? इसी को भली भौंति समझने के लिए यह देखना होगा कि पात्रों को आदर्श की ओर प्रेरित करने वाली शक्तियों में वॉल्लित बल है या नहीं। मल्लिका और गौतम बुद्ध की प्रेरणा से ही सभी पात्र क्षोभपूर्ण वृत्तियों को त्यागकर रमणीयता को प्राप्त होते हैं। मल्लिका और बुद्ध की प्रेरक शक्ति की प्रबलता से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता।

अज्ञातशत्रु पर यह लांछन भी नहीं लगाया जा सकता कि प्रसाद ने सभी पात्रों के चरित्र को आदर्शोन्मुख दिखा कर जीवन के इस प्रत्यक्ष सत्य की अवहेलना की है कि पाप दण्डनीय है और दण्डित होता भी है। देवदत्त और समुद्रदत्त का करुणा अन्त दिखाकर प्रसाद ने जीवन के उपयुक्त सत्य की भी रक्षा की है। यथार्थ चरित्र भी वही आदर्शोन्मुख हो सकता है जिसका भयंकर पतन नहीं हो पाया।

प्रसाद में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद देखकर के विद्वान चौकेंगे जो प्रसाद को केवल आदर्शवादी ही मानते हैं। किन्तु उपयुक्त पात्रों के चरित्र को देखकर कोई भी उससे इन्कार नहीं कर सकता। प्रसाद को केवल आदर्शवादी

मानकर उसे पलायनवादी सिद्ध करने वाले आलोचकों को भी प्रसाद में प्रेमचन्द का सा आदर्शोन्मुख यथार्थ चित्रण देखकर तृप्ति नहीं होगी। किंतु जो सत्य है उससे इन्कार नहीं किया जा सकता। यदि प्रसाद को कोरा आदर्शवादी माना जाए, तो यह मानना पड़ेगा कि उसके चिन्तन में अन्तर्विरोध है। 'यथार्थवाद छायावाद' निबंध में यथार्थ और आदर्श के सामंजस्य की बात कहकर भी (जैसा कि उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है) अपने साहित्य में वह उसका पालन नहीं कर सका। प्रसाद में ऐसा अन्तर्विरोध देखना कहाँ तक उचित है? आदर्शोन्मुख-यथार्थवाद प्रसाद में पलायनवाद का खण्डन करता है। इसके साथ-ही-साथ अतीत चित्रण में वर्तमान चेतना देख और समझ लेने के पश्चात् प्रसाद को कैसे पलायनवादी सिद्ध किया जा सकता है?

७—रस का प्रयोग

मनुष्य के हृदय में अनेक भाव अव्यक्त रूप से वर्तमान रहते हैं। शान्त चित्त का विकार ही भाव कहलाता है। चित्त की शान्ति में भाव का अभाव है। चित्त की व्यग्रता ही भाव को जन्म देती है। जीवन में अनेक ऐसी घटनाएँ होती हैं, अनेक ऐसी वस्तुएँ सामने आती हैं, जो चित्त को व्यग्र कर देती हैं—भावों को जन्म देती हैं। जब हम जीवन में उदित किसी भाव की मीमांसा करते हैं तो यह ज्ञात होता है कि उस भाव को उत्पन्न करने वाले कुछ तो प्रमुख कारण होते हैं, कुछ गौण कारण—सहकारी कारण होते हैं, और भाव के उदित हो जाने पर उसकी शक्ति मनुष्य को कुछ कार्य करने के लिए विवश कर देती है। उदाहरण के लिए राम और मोहन दोनों एक दूसरे के शत्रु हैं। अचानक ही वे दोनों एक दूसरे को मिल जाते हैं और मोहन राम के विषय में अपशब्द कहता है तथा उसका मजाक करता। इस पर राम को उस पर क्रोध आ जाता है। तभी राम को मोहन के पूर्व के बुरे आचरणों का स्मरण होता है और उसका क्रोध और भी बढ़ जाता है। क्रोध भर जाने पर राम मोहन पर झपट पड़ता है। यहाँ मोहन तथा उसकी उपहासपूर्ण चेष्टाएँ राम के क्रोध का कारण हैं, मोहन के पूर्व के बुरे आचरणों का स्मरण सहकारी है, तथा क्रोध के आवेश में आकर राम का मोहन पर झपटना

कार्य है। जब इसी घटना का वर्णन साहित्य में होगा तो क्रोध के कारण—मोहन तथा उसकी चेष्टाएँ—विभाव कहलाते हैं, सहकारी कारण व्यभिचारी या संचारी भाव कहलाता है, और राम के कार्य—भ्रष्टना आदि—अनुभाव कहलाते हैं। राम—जिसके हृदय में भाव की स्थिति है—आश्रय कहलाता है।

सबसे पहले भरत मुनि ने नाट्य-शास्त्र में रस-सिद्धान्त की सम्यक् प्रतिष्ठा की। रस - सिद्धान्त का मूल सूत्र है—“विभावानुभावव्यभिचारिसंयोद्र-निष्पत्ति” —विभाव, अनुभाव और संचारी के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। आगे के आचार्यों में ‘संयोग’ और ‘निष्पत्ति’ के अभिप्राय के विषय में बड़ा वाद-विवाद हुआ किन्तु अन्त में यह प्रतिष्ठित हो गया कि विभावादि रस के व्यंजक हैं और रस व्यंग्य है। रस की उत्पत्ति नहीं होती, वरन् अभिव्यक्ति होती है। भाव या स्थायी भाव तो हृदय में स्थायी रूप से रहता ही है। विभावादि द्वारा वह उद्बुद्ध होकर रस रूप में अभिव्यक्त होता है। रस भाव की सत्वप्रधान अखण्ड और चामत्कारिक अनुभूति है।

यह तो स्पष्ट ही है कि रस की प्रतिष्ठा सबसे पहले नाटकों में मानी गई, बाद में वह साहित्य के अन्य अंगों के लिए भी आवश्यक मान ली गई। प्रसाद जी ने अपने निबंधों की पुस्तक ‘काव्य-कला तथा अन्य निबंध’ में लिखा है— भारतीय वाङ्मय में नाटकों को ही सबसे पहले काव्य कहा गया।

काव्यं तावन्मुख्यतो दशरूपात्मकमेव (अभिनय गुप्त) पृ० ७०

प्रसाद के अनुसार भारतीय चिन्तन की जो आनन्दवादी धारा बही बही साहित्य में रसानुभूति की अनिवार्यता के रूप में प्रकट हुई। उन्होंने आगे लिखा है—

“किन्तु भारत में रस-सिद्धान्त के द्वारा साहित्य में दार्शनिक सत्य की प्रतिष्ठा हुई; क्योंकि भरत ने कहा है—“आत्माभिनयनं भावो (२६-२६)—आत्मा का अभिनय ही भाव है। भाव ही आत्म-चैतन्य में विश्रान्ति पा जाने पर रस होते हैं। जैसे विश्व के भीतर से विश्वात्मा की अभिव्यक्ति होती है, उसी तरह नाटकों में रस की।”

(वही पृ० ८१)

और अन्यत्र—

“फिर भी रस अपने स्वरूप में नाट्यों की अपनी वस्तु थी। और उसी में आत्मा की मूल अनुभूति पूर्णता को प्राप्त हुई थी। इसीलिए स्वीकार किया गया—काव्येषुनाटकं रम्यं।” (पृ० ८०)

जब हम राम को रावण पर क्रोध करते हुए पढ़ते हैं तो हमारा हृदय राम से तादात्म्य करता है और रावण केवल राम का ही नहीं, सहृदयमात्र के लिए क्रोध का आलम्बन हो जाता है। लेखक—तुलसीदास—के हृदय में रावण के प्रति क्रोध है, आश्रय—राम—के हृदय में रावण के प्रति क्रोध है और सामाजिक—पाठक—के हृदय में रावण के प्रति क्रोध है। सभी एक भाव-धारा में लीन हो जाते हैं। यही अवस्था साधारणीकरण की है। प्रसाद ने लिखा है—

“भट्टनायक ने साधारणीकरण का सिद्धान्त प्रचारित किया, जिसके द्वारा नट सामाजिक तथा नायक की विशेषता नष्ट होकर, लोक-सामान्य-प्रकाश आनन्दमय, आत्मचैतन्य की प्रतिष्ठा रस में हुई।” (वही पृ० ७४)

किन्तु यहीं एक अन्य प्रश्न उठ खड़ा होता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि प्रतिकूल पात्रों की वृत्तियों का साधारणीकरण नहीं होता। उदाहरण के लिए जब अज्ञातशत्रु काशी के दंडनायक पर कुपित होता है, या जब छलना वासवी पर क्रोधित होती है तो उनके भावों का साधारणीकरण नहीं होता। रामचन्द्र शुक्ल आदि विद्वानों ने ऐसे भावों की अनुभूति को निम्न कोटि की अनुभूति माना है। प्रसाद जी ने इस वैषम्य की दूसरी ही व्याख्या की है जो अधिक संगत है—

“किन्तु रस में फल भाग अर्थात् अन्तिम संधि मुख्य है, इन बीच के व्यापारों में जो संचारी भावों के प्रतीक हैं, इसको खोजकर उसे छिन्न-भिन्न कर देना है। ये सब मुख्य रस वस्तु के सहायक मात्र हैं। अन्वय और व्यतिरेक से, दोनों प्रकार से वस्तु-निर्देश किया जाता है। इसलिए मुख्य रस का आनन्द बढ़ाने में ये सहायक-मात्र ही हैं वह रसानुभूति निम्नकोटि की नहीं होती।” (वही पृ० ८३)

इस कथन से नाटकों में रस के प्रयोग के सम्बन्ध में प्रसादजी का मत स्पष्ट हो जाता है। नाटक की वस्तु के विकास में रस के उपकरण एकत्रित

होते जाते हैं और अन्त में उनकी सहायता से रसानुभूति होती है। अज्ञातशत्रु के बीच के विरोध-आदि के द्वारा अंत में शांत-रस की गम्भीर अनुभूति कराई गई है।

अब प्रश्न यह होता है कि अज्ञातशत्रु में कौन सा रस प्रधान है ? उसकी संघर्ष-प्रधान कथा को देखते हुए यह निश्चित होता है कि उसमें वीर रस प्रधान है। रौद्र, शृङ्गार, हास्य आदि उसके अङ्ग के रूप में विद्यमान हैं। किंतु यदि प्रसाद की उपयुक्त मान्यता के आधार पर देखा जाए तो बात दूसरी ही हो जाती है। यह तो स्पष्ट है कि अज्ञात आदि की उग्रता या क्रोध साधारणतया प्रतीत नहीं होते। और प्रसाद के अनुसार ये “संचारी भावों के प्रतीक हैं।” अन्त में शांत रस की ही अनुभूति होती है। यद्यपि बिम्बसार की मृत्यु हो जाती है किंतु भगवान बुद्ध का प्रवेश और उग्रता का शमन शांतिमय प्रभाव ही उत्पन्न करते हैं। इस दृष्टि से देखने पर अज्ञातशत्रु में शांत रस की प्रधानता निश्चित होती है।

एक बात खटकती सी दिखाई देती है। वह है अन्तिम दृश्य से पूर्व वासवी और छलना का हास्यपूर्ण वार्तालाप। अन्तिम दृश्य में भी वासवी कहती है—“तब तो महाराज, मैं कहती हूँ, वैसे ही कीजिए, नहीं तो आपको लेकर मैं नहीं खेलूँगी।” हास्य का यह वार्तालाप अवसर की गम्भीरता को कम करता सा लक्षित होता है। पद्मावती का वार्तालाप तो वात्सल्यपूर्ण होने के कारण अवसर के प्रभाव को और भी उत्कर्ष प्रदान करता है।

८—अन्तर्द्वन्द्व

‘अज्ञातशत्रु’ नाटक के बाह्य संघर्ष के विषय में कहा जा चुका है। उस काल की धार्मिक क्रांति भी बाह्य संघर्ष का प्रधान तत्व थी। राज्यों की परस्पर मैत्री शत्रुता का नियंत्रण करने वाली राज्यों की धार्मिक रुचि ही थी।

समाज का विकास और गतिशीलता उसके बाह्य द्वन्द्व में है जो व्यक्ति को भी प्रभावित करता है। इधर व्यक्ति पक्ष में जो विरोधी भावों का संघर्ष होता है उसे अन्तर्द्वन्द्व कहते हैं और वह समाज पर भी अपने प्रभाव के छिटे फेंके

बिना नहीं रहता। चिन्तन के क्षेत्र में दो विरोधी भावों का संघर्ष ही अन्तर्द्वन्द्व कहलाता है। बिम्बसार के चरित्र में इसका विस्तृत उद्घाटन हुआ है। उसके जीवन के दो विरोधी भाव हैं अधिकार-लोलुपता और वानप्रस्थ आश्रम की मर्यादा के निर्वाह की कामना। इस अन्तर्द्वन्द्व का ही बाह्य प्रतिफलन 'काशी-विषयक उग्र झगड़े में दिखाई देता है। बिम्बसार का यह अन्तर्द्वन्द्व आरम्भ से अन्त तक चलता है। कुछ चरित्र ऐसे भी जिनमें कुछ काल के लिये अन्तर्द्वन्द्व चलता है और फिर वह शान्त हो जाता है।

जब प्रसेनजित विरुद्ध को युवराज-पद से हटा देता है तब उसके भीतर एक ओर तो कौशाम्बी के लिए घृणा होती है और दूसरी ओर मल्लिका के प्रेम के कारण उसे उस भूमि से मोह भी है। इस घृणा और मोह के द्वन्द्व का दर्शन उसके स्वगत में दिखाई देता है। किन्तु तुरन्त ही माता की प्रेरणा के कारण उसका लक्ष्य बदल जाता है और यह अन्तर्द्वन्द्व बाह्य परिस्थितियों की जटिलता में दब जाता है और एक बार फिर से उदित होता है। विरुद्ध के अन्तर्द्वन्द्व के शमन का कारण उसके अपने चरित्र की शक्ति नहीं है वरन् बाह्य परिस्थितियों का प्रभाव और उसकी महत्वाकांक्षा है।

मल्लिका के चरित्र में भी क्षणिक अन्तर्द्वन्द्व के दर्शन होते हैं। उधर पति की मृत्यु के कारण उसका हृदय शोक-जर्जरित हो रहा है और उधर कर्त्तव्य उसे इस बात के लिए विवश करता है कि वह सारिपुत्र और आनन्द को धैर्य पूर्वक भोजन कराए। दुख और कर्त्तव्य-भावना का यह विरोध देर तक दिखाई नहीं देता। मल्लिका के चरित्र की शक्ति शीघ्र ही इसे शान्त कर देती है और वह कर्त्तव्य-पालन करती दिखाई देती है। विरुद्ध का अन्तर्द्वन्द्व शान्त होता है बाह्य परिस्थितियों के प्रभाव के कारण और मल्लिका का अन्तर्द्वन्द्व शान्त होता है आन्तरिक शक्ति के कारण। दोनों चरित्र के आगे के विकास से यह स्पष्ट है कि द्वितीय साधन ही सच्ची शक्ति को पदर्शित करता है।

अन्तर्द्वन्द्व का उदित होना बाह्य परिस्थितियों पर अवलंबित रहता है किन्तु उसका देर तक चलता रहना व्यक्ति के चरित्र की दुर्बलता प्रकट करता है। यदि व्यक्ति को अपने हृदय पर नियंत्रण नहीं है, यदि उसमें व्यक्तित्व की प्रखरता नहीं है, तो वह किसी भी विषय का ठीक हल नहीं निकाल सकता।

अन्तर्द्वन्द्व दो विरोधी मूल्यों का द्वन्द्व है। ऐसी अवस्था में उच्च मूल्य के अनुसार कार्य करना ही व्यक्तित्व की सफलता है। उदाहरण के लिए बिम्बसार के लिए राज-शक्ति की महत्ता और वानप्रस्थ की मर्यादा का संघर्ष चलता है। राजा की अवस्था देखते हुए द्वितीय मूल्य उसके लिए अधिक महत्वपूर्ण है। किन्तु दुर्बल चरित्र के कारण वह अन्त तक सही दिशा की ओर बढ़ने में असमर्थ रहता है। यहाँ एक बात और भी दिखाई देती है। जो भी कार्य मनुष्य अन्तर्द्वन्द्व की अवस्था में करता है उसका परिणाम दुःख ही होता है।

९—प्रेम-चित्रण

मानव जीवन के फूल में प्रेम की सुगन्धि है। प्रेम की सुगन्धि से काव्य को रम्य बनाने का सफल प्रयोग सभी सफल कवियों ने किया है। प्रसाद ने कविता और गद्य दोनों में ही प्रेम के सुन्दर चित्र अङ्कित किए हैं।

प्रसाद ने प्रेम के सभी रूप लिए हैं—उत्कृष्ट भी तथा निकृष्ट भी। उदाहरण के लिये अज्ञातशत्रु में ही पति और पत्नी के प्रेम के दोनों रूप मल्लिका और वासवी का दिव्य पति प्रेम तथा छलना और मागंधी का निष्कृष्ट पति-प्रेम तथा विरुद्धक का और श्यामा का लम्पट-प्रेम दिखाया है। छलना तथा मागन्धी के पति-प्रेम में स्वार्थ-वृत्ति का बिष है वासवी, मल्लिका और पद्मावती आदि के प्रेम में कर्तव्य की उज्ज्वलता है विरुद्धक का श्यामा से प्रेम वासना के तूफान के अतिरिक्त और क्या है? हां श्यामा के विरुद्धक के पति प्रेम में वेश्या का सच्चा प्रेम दिखाने का प्रयास किया गया है किन्तु उसमें भी भयंकरता ही है। अज्ञात और वाजिरा के प्रणय में, प्रेम की महानता का चित्र खींचा गया है। अज्ञात स्वयं स्वीकार करता है कि वाजिरा के प्रेम ने ही उसकी प्रतिहिंसा और विद्रोह भावना को परास्त कर दिया है।

प्रेम के दो मुख्य रूप माने जाते हैं—सम प्रेम और विषम प्रेम। सम-प्रेम में नायक-नायिका एक दूसरे से समान रूप से प्रेम करते हैं और उसका अन्त विवाह में होता है। विषम प्रेम में या तो नायक या नायिका की ओर से प्रेम की उत्सुकता का पूर्ण अभाव होता है। वाजिरा और अज्ञात का प्रेम समप्रेम है, तथा विरुद्धक का मल्लिका के प्रति प्रेम विषम प्रेम है क्योंकि मल्लिका को

विरुद्धक से प्रेम नहीं है ।

किन्तु प्रसाद साहित्य में हमें प्रेम के एक नए ही रूप के दर्शन होते हैं, जो यथार्थ होते हुए भी प्रभाव की गम्भीरता में अत्यन्त चामत्कारिक है । इसे मैं विवश प्रेम कहता हूँ । इसमें नायक और नायिका दोनों ही एक दूसरे से समान प्रेम करते हैं किन्तु फिर भी एक कारण विशेष से उनके विवाह सम्बन्ध में प्रेम की पूर्णता में बाधा पहुँचाता है और दोनों प्रेमी हृदय एक दूसरे से बिलुप्त होते हैं । इस प्रेम की विवशता का कारण समाज नहीं होता वरन् नायक या नायिका का अपना जीवन ही होता है । जहाँ तक समाज के प्रति-बन्धों का सवाल है, नायक नायिका एक दूसरे से प्रेम करने में स्वतंत्र हैं किन्तु फिर भी व्यक्तिगत कारणों से या परिस्थिति विशेष के कारण उनका प्रेम सफल नहीं होता । अजातशत्रु में विवश प्रेम का आरम्भिक रूप दिखाई देता है किन्तु आगे की रचनाओं में उसका अत्यन्त गरिमा-मय चित्र दिखाई देता है । माँगधी के गौतम के प्रति प्रेम में हमें प्रेम की विविधता का आरम्भिक रूप दिखाई देता है । माँगधी गौतम से प्रेम करती है । अन्त में वह शुद्ध होकर अपने को सफल समझती है । गौतम भी उसका यह 'सर्वस्व' छीनते नहीं हैं गौतम का प्राणि मात्र पर प्रेम है । उनके मन में माँगधी के प्रति घृणा नहीं है । प्रसाद की आगे की कृतियों की महानता तथा गम्भीरता का प्रधान कारण है विवश प्रेम का प्रदर्शन एक उदाहरण के लिये 'स्कंदगुप्त' में स्कंदगुप्त और देव सेना का प्रेम, 'चंद्रगुप्त में चंद्रगुप्त और कल्याणी का प्रेम, 'आकाश दीप' में बुद्धगुप्त और चम्पा का प्रेम । साहित्य के विद्यार्थी जानते हैं कि इन प्रेम कथाओं में प्रभाव की कितनी गम्भीरता है । विवश-प्रेम की करुणालु परिस्थिति ही आकाश दीप को हिन्दी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कहानी मानने को बाध्य करती है ।

१०—नाटक की समस्या

नाटक के लक्षणों में नायक के आवश्यक गुणों की ओर संकेत किया गया है । नायक को फल की प्रगति होती है । फल पर अधिकार रखने के कारण नायक को अधिकारी भी कहा जाता है । प्रसाद के दो नाटकों—

‘अज्ञातशत्रु और ‘चन्द्रगुप्त’—में नायक की समस्या को लेकर आलोचकों में बड़ा वाद-विवाद चला है और चलता है। यह तो ठीक है कि नायक फल का अधिकारी होता है किन्तु इसके अतिरिक्त भी नायक के निश्चय में जिस विशेष बात पर बल दिया जाता है वह है नायक का नाटक के अन्य पात्रों के बीच क्या स्थान है ? क्या उससे भी प्रबल और समर्थ व्यक्तित्व वाला कोई पात्र नाटक में विद्यमान है ? इस प्रश्न के उत्तर में हम देखते हैं कि ‘अज्ञातशत्रु’ में ‘गौतम’ का चरित्र अज्ञात से अधिक प्रभाववान है और ‘चन्द्रगुप्त’ में चन्द्रगुप्त की अपेक्षा चाणक्य ही सभी घटनाओं का नियंत्रण और संचालन करता दिखाई देता है। इस दूसरे प्रश्न पर अधिक महत्व देने वाले आलोचक गौतम बुद्ध को ‘अज्ञातशत्रु’ का और चाणक्य को ‘चन्द्रगुप्त’ का नायक मानते हैं। जो आलोचक नायक के अधिकारी स्वरूप को लेकर चलते हैं वे अज्ञातशत्रु को ‘अज्ञातशत्रु’ का और चन्द्रगुप्त को ‘चन्द्रगुप्त’ का नायक मानते हैं क्योंकि प्रथम नाटक में अज्ञात को वाजिरा और राज्य की प्राप्ति होती है और द्वितीय नाटक में चन्द्रगुप्त को कार्नेलिया तथा निरापद राज्य की प्राप्ति होती है।

किसी भी साहित्यिक समस्या को सुलभाने के दो ढंग हिन्दी के आलोचना साहित्य में लक्षित होते हैं। प्रथम कुछ आलोचकों का एक वर्ग शास्त्रीय सिद्धान्तों के चश्मे से देखकर तुरन्त फैसला दे देते हैं और फिर कोई दूसरी बात मानने के लिए तैयार नहीं होते। द्वितीय, आलोचकों का दूसरा वर्ग मर्मज्ञ दृष्टि से समस्या का मूल्यांकन करने के पश्चात् ही कोई राय देते हैं। संस्कृत के आलोचना शास्त्र ने जहाँ हिन्दी साहित्य का उपकार किया है, वहाँ उसका अपकार भी किया है। सत्य तो यह है कि आलोचकों ने उन सिद्धान्तों का गलत प्रयोग करके उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाते-बढ़ाते ही उनकी शक्ति को क्षीण किया है। मेरे कहने का यह अभिप्राय नहीं कि नाटक में नायक के निर्णय के विषय में उपरोक्त दोनों दृष्टियाँ गलत हैं। अनेक नाटकों के विषय में सही होते हुए भी हमें उन पर इतना अधिक बल नहीं देना चाहिए कि हम नाटक को—जो कि मुख्य आलोच्य है—बिल्कुल भूल ही जाएँ सैद्धान्तिक दृष्टियों के प्रयोग से पहले हम नाटक की मूल विशेषता का तथा

उसके वस्तु के उद्गम को ध्यान पूर्वक देखना होगा ।

नाटक की मूल विशेषता से मेरा अभिप्राय है नाटक की ऐतिहासिकता और सामाजिकता से, तथा वस्तु के उद्गम का अर्थ है उसका सम्बन्ध इतिहास या समाज के किस युग अथवा रूप से है । 'अज्ञातशत्रु' ऐतिहासिक नाटक है और उसका सम्बन्ध है बुद्धकालीन भारत से । उस काल के राजघरानों का चित्र प्रस्तुत करते हुए उनके कोई भी समझदार नाटककार बुद्ध के व्यापक एवं सशक्त प्रभाव की उपेक्षा नहीं कर सकता । यदि प्रसाद बुद्ध के व्यक्तित्व के विस्तृत प्रभाव को न दिखाते तो यह इतिहास की उपेक्षा होती जो कि एक भयंकर दोष है । केवल 'अज्ञातशत्रु' में ही नहीं उस काल के किसी भी बुद्ध से प्रभावित राजघराने के चित्र के यदि बुद्ध का स्पष्ट एवं स्वस्थ चित्र अंकित नहीं किया गया, तो वह एक अक्षम्य दोष होगा । कथा-प्रसंग में प्रसाद ने स्पष्टतः कहा है कि उस काल में उत्तरी भारत के राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों को निर्मित नियंत्रित करने वाली शक्ति थी धार्मिक शान्ति । इसी प्रकार 'चन्द्रगुप्त' में यदि चाणक्य के व्यक्तित्व का निखार न होता तो वह इतिहास की भयंकर भूल होती ।

अब सवाल यह उठता है : यदि 'अज्ञातशत्रु' में बुद्ध का व्यापक प्रभाव दिखना इतिहास के अनुरोध की बात थी, तो प्रसाद ने बुद्ध को ही इसका नायक क्यों नहीं बनाया ? इस प्रश्न के उत्तर में हमें यह देखने की आवश्यकता है कि बुद्ध के प्रभाव का स्वरूप क्या है ? यह स्पष्ट है कि बुद्ध का प्रभाव घटनाओं के आरम्भ या विकास में नहीं, उनकी शक्ति में है । दोनों युद्धों में हमें बुद्ध का कोई प्रभाव नहीं दिखाई देता । दूसरे युद्ध के बाद शान्ति के प्रसार में उनकी शक्ति दिखाई देती है । जब घटनाओं के निर्माण और नियन्त्रण में बुद्ध का कोई हाथ नहीं तो वह नायक कैसे हो सकते हैं ? लेखक की दृष्टि अज्ञातशत्रु पर ही केन्द्रित है और उसने उसे ही भारत के ज्ञात इतिहास का प्रथम सम्राट माना है ।

दूसरा सन्देह यह बताया जाता है कि अज्ञातशत्रु का व्यक्तित्व दुर्बल है, वह देवदत्त और कुलना के हाथ का खिलौना बन जाता है । यहाँ भी ऐतिहासिक अनुरोध की बात इस शंका का समाधान करती है । कथा प्रसंग में

लेखक ने लिखा है कि देवदत्त ने राजशक्ति का सहयोग पाने के लिए रानी छलना को राजा बिम्बसार के विरुद्ध भड़काया। किन्तु देवदत्त का उद्देश्य है गौतमबुद्ध को नीचा दिखाना और अज्ञातशत्रु का उद्देश्य है अपनी राजशक्ति को अक्षुण्ण रखना। प्रथम और द्वितीय दोनों युद्धों में यही बात दिखाई देती है पहली बार वह काशी लेने के लिए युद्ध करता है और दूसरी बार राज्य के रक्षा के लिए। एक बात और भी है। जब हम यह कहते हैं कि अज्ञातशत्रु को छलना या देवदत्त ने युद्ध के लिए प्रेरित किया, तो यह बात भी इससे ध्वनित होती है कि अज्ञात में युद्ध करने की शक्ति और साहस है। उसका युवराज-रूप ही उद्धत है। काशी के चले जाने का समाचार सुनकर वह छलना या देवदत्त की प्रेरणा से क्षुब्ध नहीं होता, वरन् देवदत्त के आने से पहिले ही उसका युद्ध का निश्चय स्पष्ट हो जाता है जब वह काशी के मूर्ख दण्ड-नायक की जबान खींच लेने की बात कहता है।

ऐसे नाटकों में जहाँ नायक के निर्धारण में विभिन्न मत हों हमें दो प्रमुख पात्रों की कल्पना कर लेनी चाहिए। प्रथम नायक जो घटनाओं में प्रत्यक्ष रूप से सक्रिय भाग लेता है और फल का अधिकारी होता है और द्वितीय, प्रधान पात्र जो घटनाओं के निर्माण में सक्रिय भाग लेता है। कोई कह सकता है कि नायक ही प्रधान पात्र होना चाहिए और प्रधान पात्र ही नायक होना चाहिए किन्तु ऊपर यह प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया गया है कि ऐतिहासिक नाटकों में कभी-कभी इतिहास के अनुरोध से नायक को ही प्रधान पात्र के रूप में प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। प्रधान पात्र का निश्चय होता है नाटक में व्यापार के विकास के द्वारा। महात्मा बुद्ध तो 'अज्ञातशत्रु' नाटक के प्रधान पात्र ही नहीं, उस युग के लोक-नायक हैं। नाटक में कार्य के विकास के द्वारा और फल प्राप्ति के द्वारा अज्ञातशत्रु का ही नायकत्व सिद्ध होता है।

व्याख्या

पृ० २३

मृगशावक = हरिण का बच्चा । चित्रक = चीता । अनुचर = सेवक । कण्ठाभरी = दर्द भरी । दृष्टि = नजर । निष्ठुर = कठोर, निर्दय ।

पृ० २४

अभिशाप = शाप । मृगया = शिकार । निरीह = निस्सहाय । निर्दयता = कठोरता । मानवी सृष्टि = मनुष्यों का संसार । क्रूरता = दुष्टता । निदर्शन = प्रतीक, उदाहरण । हिंस = हिंसक । चाटूक्तियों = खुशामद भरी बातें । भावी शासक = होने वाला राजा । अविचार = गलत विचार । मानसिक उन्नति = व्यक्तित्व की उन्नति । मुशासित = भली प्रकार से शासित ।

पृ० २५

याला = वह गड्ढा जिसमें पेड़-पौधे लगाए जाते हैं । तिरस्कार = बेइज्जती अपमान । मंगल-कामना = कल्याण की इच्छा । कुटिलता = दुष्टता । अयोग्य = मूर्ख । आत्मसात् करना = हथिया लेना, अपने में मिला लेना । अन्यथा तिरस्कार = व्यर्थ अपमान । वत्स = पुत्र ।

पृ० २६

प्रलोभन = लोभ । अपदस्थ = पद से हटाना । गृह-विद्रोह = घरेलू झगड़ा । अपेक्षित = इच्छित ।

“बच्चे

क्यों घर ?”

शब्दार्थ—कुल-लक्ष्मी = धन की देवी । मुदित = प्रसन्न । मंगल = कल्याण सुख । बन्धुवर्ग = रिश्तेदार । प्रणत = विनीत । अनुचर = सेवक । स्पृहणीय = कमनीय ।

भावार्थ—यदि घर के बच्चों में आपस में प्रेम हो, वह एक दूसरे से मिलकर खेलें, धन की देवी प्रसन्न हो और बच्चों का जीवन सुखों से भरा

हुआ हो ; रिश्तेदारों का आदर हो, सेवक सुखी हों, दास, विनीत एवं आज्ञाकारी हों, घर के स्वामी के मन में सन्तोष हो तो वह घर क्यों कमनीय न हो ?

प्रभु = स्वामी ।

पृ० २७

अकर्मण्य = आलसी । असत्य-गर्व = झूठा घमण्ड ।

पृ० २८

“आह

तो भी क्या !”

शब्दार्थ—क्षणभंगुरता = नश्वरता । अदृष्ट = भाग्य । लुप्त होना = छिपना । प्रवृत्त=रत । अकांड-तांडव=व्यर्थ उछल-कूद । महत्व की आकांक्षा= महान् बनने की इच्छा । सुदृढ़ = स्थायी ।

भावार्थ—मनुष्य जानता है कि संसार नश्वर है किन्तु फिर भी वह अपने जीवन को चिरस्थायी बनाने का प्रयत्न करता है । जब आकाश रूपी नीले पत्र पर चमकते हुए तारों के अक्षरों में लिखा हुआ भाग्य का लेख मिटने लगता है, मनुष्य समझने लगता है कि प्रातःकाल हो गया । दिन के निकल आने पर वह जीवन रूपी युद्ध में संलग्न होकर व्यर्थ की उछल-कूद करने लगता है । अनेक भीषण और हिंसापूर्ण कार्य करता है । वह जीवन की समस्याओं के प्रति सजग नहीं होता । किन्तु प्रकृति उसे रात्रि के अन्धकार में उसके गुप्त भाग्य के लेख समझाने की चेष्टा करती है । दिन अपनी ज्योति का संसार लेकर आता है बीत जाता है । रात अपने नक्षत्रों के खजाने को लेकर आती है, छिप जाती है । प्रकृति मनुष्य को यही नाश और परिवर्तन का क्रम समझाने का प्रयत्न करती है । किन्तु मनुष्य प्रकृति के सन्देश को सुनता ही नहीं । वह शक्ति और सत्ता की प्राप्ति की इच्छा करता है । उस इच्छा को पूर्ण करने का प्रयत्न करता हुआ मर जाता है किन्तु उसकी इच्छा पूर्ण नहीं होती । मनुष्य की वर्तमान परिस्थितियाँ चाहे कितनी ही सन्तोषप्रद क्यों न हों, किन्तु वह उनसे असन्तुष्ट होकर महत्ता को प्राप्त करने के लिए ऊँचा चढ़ता है । महान् बनने के उस प्रयत्न में चाहे वह बार-बार विफल ही क्यों न हो, उसकी जान ही क्यों न चली जाए, किन्तु वह सन्तोष कभी नहीं करता ।

विस्मर के व्यक्तित्व का चिंतन शील रूप उन पंक्तियों में मुखर है ।

“साधारण

क्षुद्र समझे ।

शब्दार्थ—क्षुद्र=नीच ।

भावार्थ—महाराज ! सामान्य पशु भी उन्नति करना चाहते हैं । महान बनाना चाहते हैं । फिर भला प्राणियों में श्रेष्ठ मनुष्य ही क्यों उन्नति की इच्छा न करे ? कौन ऐसा है जो उन्नति करने का इच्छुक नहीं है । किन्तु यदि कोई बढ़ना चाहता है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि वह अन्य सभी व्यक्तियों को तुच्छ एवं नीच समझे ? वह बेशक उन्नति करे, किन्तु अन्य व्यक्तियों को भी उन्नति करने का अवसर दे; उनका तिरस्कार न करे ।

पृ० २६

अवहेलना=अनारद । नीरव अपमान = चुपचाप किया हुआ अनारद, गुप्त तिरस्कार । सांकेतिक घृणा = अस्पष्ट एवं व्यंग्य नफरत । अपकार=अनहित । अभियोग=लौंछन । उत्पात=भगड़ा । युवराज्याभिषेक=युवराज बनाने के लिये तिलक । आवेग = जोभ, आवेश । महाश्रमण तथागत = महात्मा बुद्ध ने नाम ।

पृ० ३०

“राजन्

करुणा से ।

शब्दार्थ—करुणा=दया । गोधूलि=संध्या; जब गौएँ चरकर लौटती हैं । राग-पटल = लालिमा का आवरण । स्नेहांचल = प्रेम का अंचल । स्निग्ध = मधुर । शुभ्र=स्वच्छ, निर्मल । हास-विलास=हँसी और खेल । मधुर=सुन्दर । चन्द्रकान्ति=चांदनी । निर्निमेष=अपलक । निष्ठुर=निर्दय । आदि सृष्टि = आरम्भिक संसार । विजित हुई=हार गई । अरुण=लाल, आकर्षक ।

भावार्थ :—हे राजा ! कोई व्यक्ति किसी पर कृपा नहीं कर सकता । सभी जीवों को समान समझने वाली करुणा ही संसार का मंगल और कल्याण कर सकती है । यह करुणा ही व्यक्ति को दूसरों पर दया करने के लिए विवश करती है ।

संध्या के समय आकाश में लालिमा का आवरण छा जाता है । सभी

व्यक्ति दिन भर के परिश्रम के पश्चात् अपने-अपने घरों में विश्राम करते हैं। संध्या उन्हें प्यार देकर शास्त्र करती है। संध्या का यह प्रेम करुणा की ही देन है। प्रातःकाल के सुहावने समय में निर्मल आकाश की छाया में सभी प्राणी आनन्द मनाते हैं। प्राणियों को यह आनन्द उषा नहीं देती वरन् उसकी करुणा के कारण ही ये हर्षित होते हैं। रात के समय चारों ओर चाँदनी बिखर जाती है। नन्हें बच्चे मुग्ध होकर चाँद की ओर देखने लगते हैं। यह मनोहर चाँदनी बरसाने वाली रात नहीं है वरन् करुणा ही है। रात में ओस की बूँदें गिरा करती है जिससे वनस्पतियाँ शीतल होती हैं। तारों के अपलक नयनों से ओस गिरा कर वनस्पति को शीतल करने वाली भी करुणा ही है। इसी करुणा ने ही तो खूनी और बर्बर पशुओं के संसार को जीत लिया है। पशु भी करुणा द्वारा वश में किए जा सकते हैं। इस पंक्ति का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि आदि मानव पशुओं के समान खूनी और जंगली था। जब उसके हृदय में करुणा का संचार हुआ तो उसकी बर्बरता और हिंसाता विलीन होगई और वह मनुष्य बन गया। इस आकर्षक करुणा के ही कारण तो मनुष्य संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना जाता है।

विशेष—महात्मा बुद्ध यह सिद्ध करते हैं कि हमें जहाँ भी दूसरों के कल्याण की भावना दिखाई देती है, उसके मूल में करुणा ही है। केवल मनुष्यों के विषय में ही यह सत्य नहीं है, वरन् प्रकृति की मनोहर और सुखद शोभा के मूल में भी करुणा ही है।

“करुणामूर्ति

कृतार्थ हुआ।”

शब्दार्थ :—करुणा मूर्ति = दया की मूर्ति। वसुधरा = धरती। स्पर्श से=छूने से। कलंक-कालिमा=दोष रूपी कालिमा। शुद्ध बुद्धि=सांसारिकता से मुक्त बुद्धि। निर्लिप्त=असंग, निष्काम, स्थित। साक्षी=द्रष्टा, दर्शक। तटस्थ = पक्षपात रहित मनुष्य। शुभेच्छा=मङ्गल-कामना। सत्व = सौख्य मत के अनुसार प्रकृति के तीन गुण माने जाते हैं। (१) तमोगुण अज्ञान का प्रतीक है, (२) रजोगुण दुख का प्रतीक है और (३) सतोगुण ज्ञान स्वरूप है। अप्र-त्यक्ष रूप से = छिपे रूप में। विरक्त=संसार से उदासीन, सन्यासी। नरकाग्नि =नरक की भयंकर ज्वाला, भीषण दुख।

भावार्थ :—हे दयानिधे । लड़ाई-भगड़ों और खून से रंगी हुई धरती आपके दिव्य चरणों के प्रभाव से अवश्य शुद्ध हो जाएगी । वह अपने पापों की कालिमा से मुक्त हो जाएगी । सारा संसार करुणा को अपनाकर पुण्यात्मा हो जाएगा ।

गौतम—हे राजा ! वह बुद्धि जो विषय-वासनाओं को त्यागकर पवित्र हो गई है, कभी किसी का पक्षपात नहीं करती । वह कभी कोई कामना नहीं करती । जिस प्रकार से दर्शक बिना स्वयं भाग लिए हुए नाटक इत्यादि देखते हैं इसी प्रकार निर्मल बुद्धि भी बिना सांसारिक भगड़ों में फँसे हुए उन्हें देखा करती है । किन्तु तटस्थ रहकर भी उसका उद्देश्य यह होता है कि सदाचार और सत्य की विजय हो । वह सदाचार और सत्य का समर्थन करती है । निष्पक्ष मनुष्यों की यह पवित्र इच्छा ज्ञान में जन्म लेती है और संसार में सदाचार और धर्म की प्रतिष्ठा करती है । यदि सन्तों के मन में सत्य के विजय की कामना न हो तो अन्याय और दुराचार बढ़ने लगते हैं । दुराचार को दबाने की इच्छा न करने का अर्थ होगा उसकी स्वीकृति । यदि अन्याय की उपेक्षा की जाए, तो उसे बल मिलता है । हम जैसे उदासीन मनुष्यों को भी राजाओं के दर्शन की आवश्यकता इसलिए होती कि हम सत्य के पोषण की कामना करें । किंतु इस कामना को सफल बनाना राजशक्ति का काम है ।

विशेष—प्रसाद के प्रगति कामी तत्व यहां व्यक्त हुए हैं । यदि संयास लेने का अर्थ संसार की—उसकी बुराइयों की—उपेक्षा है तो वह पाप को पुष्ट करेगा । जीवन से ऊपर उठना, उससे पलायन करना नहीं है । मनुष्य को जीवन से ऊपर उठने का प्रयत्न भी करना चाहिए और जीवन के निम्न स्तरों के उन्नयन का प्रयास भी करना चाहिए ।

बिम्बसार—जिस प्रहार जल की धारा आग की लपटों को बुझा देती है, उसी प्रकार भगवान के शान्तिमय वचन भीषण दुखों को भी शान्तकर देगी । आपका प्रवचन सुनकर मेरा जीवन सफल हुआ ।

“शीतल वाणी

सीढ़ी है ।”

शब्दार्थ—शीतल=शांत । मधुर=मीठा । बन्य=जङ्गली । बाक्संयम=वाणी को वश में रखना, संभल कर बोलना ।

भावार्थ—यदि मनुष्य के बचनों में शान्ति छलकती हो, यदि मनुष्य का व्यवहार प्यार-भरा हो, तो वह जंगली जानवरों को भी वश में कर सकता है । हे राजा ! संसार भर में जितने भी भगड़े होते हैं उनका कारण है व्यंग । हृदय पर जितनी चोट व्यंग की होती है, उतनी तो कटार की भी नहीं होती । यदि मनुष्य संसार भर से मित्रता रखना चाहता है तो सबसे पहले उसे अपने वचनों पर नियन्त्रण करना होगा । हर एक व्यक्ति से संभलकर बोलना होगा ।

पृ० ३२

“योग्यता

विश्राम लो ।”

शब्दार्थ—राज्यश्री=राज्य लक्ष्मी । दर्पण = शीशा । विश्वस्त = विश्वास करने योग्य ।

भावार्थ—बिम्बसार—महाराज ! राज-कार्य को संभालने के लिए बड़ी प्रतिभा की आवश्यकता है । यह तो बड़ा ही कठिन कार्य है । जवान व्यक्ति तो राज्य की लक्ष्मी को हमेशा तलवार के शीशे में ही देखना चाहता है ।

गौतम—तुम्हारा कहना ठीक है । किन्तु जब तक कोई काम किसी व्यक्ति से करवाया न जावे हम कैसे कह सकते हैं कि वह यह काम कर सकता है या नहीं । जब तक वह कार्य कर न ले, वह भी हमें किसी प्रकार यह विश्वास नहीं दिला सकता कि वह कार्य कर सकता है । तुम्हारा यह कहना कि अजात में युवराज बनने की योग्यता नहीं है एक बहाना भर है । वास्तव में तुम्हें अभी राजशक्ति का लोभ उलझाए हुए है । राजन् ! मेरी बात पर विचार करो और उसके अनुसार आचरण करके तुम्हें चाहिए कि घरेलू भगड़ों और मानसिक संघर्षों से मुक्त हो जाओ ।

पर्याप्त=काफी । कंचुकी=द्वारपाल ।

पृ० ३३

मुशासित=भली प्रकार से शासित । उद्धत=उग्र, प्रचण्ड । उद्धार = रक्षा । अनुयायी=पीछे चलने वाला । कपट-मुनि=धोखेबाज सन्यासी । अक-

स्मात् = अचानक । गुप्तचर = जासूस । कूटमन्त्रणा = कपट भरी सलाह । अधः पतन = अवनति ।

पृ० ३५

अवलम्बन = सहारा, आश्रय ।

पृ० ३६

पुनीत = पवित्र । पोषण = पालन, रक्षण ।

“संसारी

समभक्ता है ।”

शब्दार्थ :—तितिक्षा = क्षमाशील, क्षमा । वीतराग = सन्यासी ।

भावार्थ :—संसारी मनुष्य के लिए त्याग, क्षमा और विरक्ति दिखाने का स्वाभाविक साधन है पुत्र । जब मनुष्य अपने पुत्र को सारी संपत्ति देकर सन्यासी हो जाता है तो उसे दुख नहीं होता क्योंकि मनुष्य अपने में और अपने पुत्र में भेद नहीं समझता । जब पुत्र सम्पत्ति का भोग करता है तो मनुष्य उसे अपना ही भोग समझता है ।

अधिकार से बंचित = अधिकार से रहित । याचक = भिखारी । पीयर (सं० पितृ गृह) = पिता का घर ।

पृ० ३७

द्वेष = घृणा । परिहास = मजाक । आत्मीय = संबंधी । निष्कपटभाव से = ईमानदारी से ।

“महाराज

करें ।”

शब्दार्थ :—सारी क्रियाओं का = सारे कर्मों का । अनन्त विश्राम = हमेशा रहने वाली शान्ति । बाह्य = बाहरी । आन्तरिक = मन की । पिपासा = इच्छा । विलम्ब = देर ।

भावार्थ :—महाराज ! जीवन की सारी हलचल और वेग का उद्देश्य है असीम शान्ति । मृत्यु हो जाने पर मनुष्य की सारी चंचलता हमेशा के लिए सो जाती है । यह जो संसार में कोलाहल दिखाई देता है, इसका उद्देश्य है मन की शान्ति । मनुष्य कोई भी कर्म केवल इसी उद्देश्य से करता है कि उसे सुख और तृप्ति प्राप्त हो । और जब मन में उस शान्ति को पाने के लिए तीव्र इच्छा उत्पन्न हो जाए तो मनुष्य उसके लिए प्रयत्न करने में देर क्यों

करे ? जो अवश्यम्भावी हैं और स्पृहणीय है, उसकी प्राप्ति में देर करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

अदृष्ट=भाग्य । अकर्मण्य=कर्म हीन, आलसी ।

पृ० ३८

“नहीं महाराज

आया हूँ ।”

शब्दार्थ :—नियति=भाग्य । कर्मकूप=कर्म रूपी कुँआ । उच्छृङ्खल=असंयमित ।

भावार्थ—नहीं महाराज ! भाग्य तो मेरा सहारा है । जिस प्रकार व्यक्ति रस्सी को पकड़कर कूँए में निडरता से कूद पड़ता है, उसी प्रकार मैं भी भाग्य का सहारा लेकर कर्मपथ पर अग्रसर हो सकता हूँ । क्योंकि यह मेरा विश्वास है कि जो होना है, वह तो होगा ही फिर डर किस बात का । आने वाली विपत्तियों से डरकर कर्म का त्याग कर देना तो मूर्खता है । मैं इस असंयमित राजसत्ता का शत्रु बनकर आपकी सेवा करने के लिए आया हूँ ।

विशेष—कई चिंतक भाग्यवाद और कर्मवाद को शोषण का ढोंग मानते हैं किन्तु इन पंक्तियों में प्रसाद ने वह सिद्ध किया है कि भाग्यवाद पलायनवाद नहीं है, वह मनुष्य को डरपोक और दबू नही बताता, वरन् उसका सहारा लेकर मनुष्य और भी अधिक निर्भीक और सक्रिय हो सकता है ।

व्यस्त=व्याकुल । कुचक्र=जाल । प्रतिद्वन्द्विता=शत्रुता । महत्त्वकांक्षा=महान बनने की इच्छा । गर्त=खाई । प्रतिष्ठा=आदर ।

“मूर्खता

दे सकेगा ।”

शब्दार्थ—क्षुद्रता=नीचता । अवलंब=सहारा । दिव्य = दैवी, अलौकिक । स्वतः = अपने आप ।

भावार्थ—“यदि देवदत्त ऐसा सोचता है तो यह उसकी मूर्खता ही नहीं वरन् नीचता भी है । जिसकी आत्मा में तेज है, जिसमें मानसिक शक्ति है वह किसी दूसरे का सहारा पाकर या दूसरे की प्रशंसा के बल पर संसार में महिमा को प्राप्त नहीं होता । वह आत्मिक शक्ति तो स्वयं ही गौरवपूर्ण है । मेरी प्रशंसा से उसकी प्रशंसा नहीं होगी और यदि मैं उसकी बुराई करूँगा तो वह बुरी नहीं सिद्ध होगी । महात्मा बुद्ध की आत्मा का अलौकिक तेज तो

स्वयमेव सभी की आँखों को अपनी ओर खींच लेता है। सभी उससे प्रभावित हो रहे हैं। यदि देवदत्त भगवान बुद्ध का विरोध करता हो तो इससे उनकी प्रतिष्ठा कम होना तो दूर वरन् उनका यश और भो लहहरा उठेगा।

उत्सर्ग=बलिदान। सद्बुद्धि=विवेक।

पृ० ३६

चिरसंगिनी=सदा की साथी। स्वतन्त्र वृत्ति=आजादी से धन प्राप्त करने की आवश्यकता है। राजस्व=राज कर। प्राप्य=अधिकार। उद्योग=प्रयत्न। भिक्षावृत्ति=भीख माँगना। अपूर्व=अनुपम। दण्डनायक=वह अधिकारी जो शासन करता है तथा अपराधियों को दण्ड देता है। निश्वास=ठण्डी साँस।

“न धरो

की जपना।”

शठ्दार्थ—वैभव=सम्पत्ति। पड़े कलपना=दुखी होना पड़े। जपना=रटना नाम लेना।

भावार्थ—हे मनुष्य इस साँसारिक ऐश्वर्य को अपना कहकर मत भूलो। यह तो दो दिन के सपने के समान नष्ट होने वाला है। आज धन है, कल वह नष्ट हो जाता है। सम्पत्ति तो बरसाती नाले के समान है, या पहाड़ के भरे हुए भरने के समान है। जिस प्रकार बरसाती नाला या पहाड़ी भरना निरन्तर बहता रहता है उसी प्रकार धन और ऐश्वर्य भी निरन्तर बदलता रहता है। वे भिक्षु धन के बरसाती नाले से कहते हैं कि तुम निरन्तर बहते रहो क्योंकि बहना तो तुम्हारा स्वभाव ही है। किन्तु अपने वेग में तुम अन्य मनुष्यों को मत बहाकर ले जाओ जिससे बाद में उन्हें दुखी होना पड़े। जो व्यक्ति धन के मोह में फँस जाता है वह हमेशा दुखी रहता है। हे मनुष्यो तुम दुखी मनुष्यों के आँसू पोंछ लो; उनके दुखों को दूर करदो जिससे कि वे आँहें न भरते रहें; दुखों में पिसते न रहें। तुम लोभ को त्याग दो। अपने हृदय को स्वार्थ से मुक्त कर परोपकार में लगादो और एक उसी ईश्वर का ध्यान किया करो।

‘वैभव-भरना’ में सम्बोधन का रूप स्पष्ट नहीं है।

पृ० ४०

कंकण=कंगन । रंग=प्रभाव । अस्थि-चर्म का शरीर=हड्डी और चमड़े का बना हुआ यह शरीर । पटाक्षेप=पदों का गिरना ।

पृ० ४१

“उस रूप

सकती हैं ।”

शब्दार्थ—स्वगत=अपने-आप । दरिद्र भिक्षु=गरीब भिखारी, गौतम बुद्ध ने मागन्धी से विवाह करना अस्वीकार कर दिया था । ज्वाला=आग, क्षोभ । रूप-गौरव=सौन्दर्य का आदर । अभाव=कमी । यन्त्रणा=पीड़ा । प्रतिशोध=बदला । व्रत=निश्चय ।

भावार्थ—उस गरीब भिखारी ने मुझसे विवाह करना अस्वीकार कर मेरे सौन्दर्य का बहुत अधिक अपमान किया है । अब मैं उदयन की रानी हो गई हूँ । किन्तु उस अपमान की आग में अभी तक मैं जल रही हूँ । यहाँ मुझे सौन्दर्य का गौरव तो प्राप्त है किन्तु सभी मुझे एक गरीब की पुत्री समझते हैं । अब मैं इसी अपमान की पीड़ा में घुली जा रही हूँ । किन्तु आज मैं निश्चय करती हूँ कि मैं अपने इस अपमान का भी बदला लूँगी । यदि उदय राजा है तो क्या ? मैं भी अपने मन की रानी हूँ । जो मैं चाहूँगी वही करूँगी । मैं सब को दिखा दूँगी कि स्त्री अपने अपमान का बदला लेने के लिए क्या-क्या कर सकती है ?

वक्तृता = भाषण, उपदेश । आसव = रस, मदिरा । तितिक्षा = क्षमा-शीलता, सहिष्णुता ।

पृ० ४२

“अली

अवहेला की ।”

शब्दार्थ—अली=भँवरा । अवहेला=उपेक्षा, अपमान । सौरभ=सुगन्धि । बेला=समय । विरस=सूखा, उदास । मलयज=मलय-पवन ।

भावार्थ—भँवरे ने क्यों मेरी उपेक्षा की है ? चम्पा की कली खिली और अपनी सुगन्धि को बिखेर कर उसने उषाकाल को बड़ा आकर्षक बना दिया । दिन में भी भँवरा नहीं आया इसलिए उसका सारा दिन उदासी में बीता । मन को बहलाने के लिए वह दिनभर मलय-पवन से खेलती रही । भँवरे ने

क्यों मेरी उपेक्षा की है ?

विशेष—यहाँ अन्योक्ति पद्धति द्वारा कवि ने मागन्धी के भावों को प्रकट किया है । राजा उदयन भँवरा है । मागन्धी चम्पा की कली है ।

उपकरण=साधन, प्रबन्ध । अस्तव्यस्त न हो=बिगड़े नहीं ।

पृ० ४३

“प्यारे

फूलना रे ।”

शब्दार्थ—मरुस्थल=रेगिस्तान ।

भावार्थ— हे प्रिय ! प्रेम का नाता तोड़कर तुम हमको मत भूलना । तुम सदैव शीतल दया रूपी जल बरसाया करो जिससे हमारा हृदय रूपी रेगिस्तान नित्य ही स्निग्ध होता रहे । तुम काँटेदार फूल हो, किन्तु फिर भी तुम हमारे हृदय रूपी रेगिस्तान में ही खिलो । जिस प्रकार फूल में काँटे होते हैं, उसी प्रकार प्रिय में विरह के काँटे हैं ।

संघ=मण्डली । निमन्त्रित=बुलाए जाते थे । अनुरोध=आग्रह । सोहता=सुशोभित होता है । पातिव्रत=पति-सेवा का व्रत ।

पृ० ४४

शब्दार्थ—सशंक=सन्देह करने वाला । विषाक्त=जहरीला । हलाहल=विष । ग्रास=कौर । हाला=शराब । तृप्त=सन्तुष्ट । अभिलाषा=इच्छा । प्रेमोन्मत्त=प्रेम में पागल ।

“तो मागन्धी

पागल हो जाए ।”

शब्दार्थ—मुखचन्द्र=मुख रूपी चन्द्रमा । निर्निमेष=अपलक । अतीन्द्रिय=इन्द्रियों से परे । नक्षत्रमालिनी निशा=नक्षत्रों की माला से सुशोभित रात्रि । शरच्चन्द्र=शरद् ऋतु का चन्द्रमा । सुरभि निःस्वास=सुगन्धित सौँस । मेरी कल्पना का आलिङ्गन करने लगे=शरच्चन्द्र की मेरी कल्पना से मिल जाए । आलिङ्गन=मिलन । मूर्च्छना=संगीत में सातों स्वरों का उतार-चढ़ाव । विश्व-मोहिनी=संसार को मोहित करने वाली । सहकारिण=संगिनी ।

भावार्थ—मागन्धी ! अब तुम कोई गीत सुनाओ । और मुझे अपने मुख रूपी चन्द्रमा को अपलक देखने दो । तुम्हारे मुख को देखते-देखते मैं एक अलौकिक संसार की तारों भरी रात को चाँदनी में डुबो देने वाले शरद् ऋतु

के निर्मल चाँद की कल्पना करता हुआ भावना के रस से भी अधिक आनन्द-प्रद लोक में पहुँच जाऊँ । तुम्हारी सुगन्धित साँसें मेरी उस कल्पना में घुल-मिल जाएँ ।

मागन्धी का मुख इतना सुन्दर है कि उसे अपलक देखने से उस जैसे शोभा वाले शरद् ऋतु के अलौकिक चन्द्रमा की कल्पना मन में उठने लगती है । उस अलौकिक चन्द्रमा के साथ ही साथ तारों के हार से सुशोभित रात्रि का भी चित्र आँखों के सामने खिंच जाता है । मागन्धी की साँस में सुगन्धी है । उस अपूर्व रात्रि से सुगन्धि से लदी वायु बह रही है । उदयन कामना करता है कि मागन्धी की सुगन्धित साँसें ही उस कल्पित रात्रि की सुगन्धित पवन बन जाए । कल्पना का लोक इन्द्रियों से परे है इसलिए उसे अतीन्द्रिय कहा और यह दृश्य अलौकिक है तो उसकी कल्पना करने वाला व्यक्ति भावना के रस से भी अधिक आनन्द मग्न हो जाएगा ।

मागन्धी—मैं भी यही चाहती हूँ कि मेरे गीतों की लहरी के साथ-साथ मेरे स्वामी की संसार को मोहित कर देने वाली वीणा भी बजे । मेरे हृदय के स्वर और आपकी वीणा के स्वर एक दूसरे से मिलकर गूँज उठें । और तब जब संगीत लहरी सम पर आवेगी तो सारा संसार मस्ती में अपना सिर हिला देगा और उसकी मिठास में पागल हो जाएगा ।

विशेष—प्रसाद की शैली का कवित्व दर्शनीय है ।

पृ० ४५

मद्यप=शराबी । हस्तिस्कन्ध=वीणा का नाम ।

“आओ

प्राण प्यारे !”

भावार्थ—हे प्राण प्यारे ! तुम हमारे हृदय में प्रवेश करो । अब मेरे नेत्र भी निर्दयी हो गए हैं । तुम्हें देखे बिना उन्हें चैन नहीं पड़ता । तुम्हारे वियोग में मुझे तड़पाया करते हैं । मैंने सब कुछ त्याग कर तुम्हें प्राप्त किया है । देखें, तुम हमारे होते हो या नहीं । हम और तुम एक क्षण भर के लिए भी एक दूसरे से न बिछुड़ें जिससे हमारे शरीर और मन का दुख दूर हो ।

हृदयेश्वरी=हृदय की स्वामिनी या देवी ।

“हमारे वक्ष

पूज पाएगी ।”

शब्दार्थ—वक्ष=छाती । निज=आपकी । माधुरी=सौन्दर्य ।

भावार्थ—तुम्हारी शोभा मेरी छाती में हृदय बन कर वास करेगी । जिस प्रकार हृदय जीवन का आधार होता है, उसी प्रकार तुम मेरे जीवन का आधार हो जाओगी । और यह शोभा स्वयं ही अपने सौन्दर्य और सुषमा का मनोहर गीत गाएगी । सदैव तुम्हारा सौन्दर्य मुझे मस्त बनाए रहेगा । और तब मेरी चेतना तुमसे अलग बिल्कुल न रहेगी । वह संसार रूपी मन्दिर में केवल तुम्हारी ही पूजा करती रहेगी । सारे विश्व में उसे तुम्हारी शोभा दिखाई देगी ।

प्रत्यक्ष हुई=घटित हुई । प्रतिशोध=बदला । पाखंडपूर्ण=कपट-भरा । असह्य=नहीं सहा जा सकता ।

पृ० ४६

प्रतिहिंसा=बदल लेने की भावना । निर्धारित=निश्चित ।

पृ० ४७

दुष्कर=कठिन । असन्तुष्ट=नाराज । परिजन = सम्बन्धी । अनुरोध=आग्रह । श्रेयस्कर=शुभ । विरक्ति=उदासी । षड्यंत्र=जाल । आशंका=डर । कर्त्तव्य निर्धारण=कर्त्तव्य का निश्चय ।

पृ० ४८

कल्याण-कामना = सुख की इच्छा । पूर्व-गौरव=पहला सम्मान । अभिवादन=नमस्कार ।

“चंचल

सार कहाँ ?”

शब्दार्थ—चपल=गतिवान । ग्रह = नक्षत्र । अनिल=वायु । अनल = आग । थल = स्थल, धरती । प्रगति = उन्नति । चञ्चला=बिजली । नश्वर-परिणामी=नाशवान और परिवर्तनशील । सीठी=स्वाद-हीन ।

भावार्थ—चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, तारे सभी चंचल हैं । वायु, आग, जल, धरती सभी पारे के समान अस्थिर हैं । जगत उन्नति करने के प्रयत्न में चंचल है । मन तो सदैव उड़ा ही करता है । प्रकृति बिजली के समान हर क्षण बदलती रहती है । अणु, परमाणु, सुख-दुख और सुखों के साधन सभी नश्वर हैं । सभी वस्तुएँ नाशवान हैं, परिवर्तनशील हैं, न किसी को स्थायी दुख

मिला है और न ही स्थायी सुख । क्षणभंगुर सुखों को स्थायी मान बैठना या उन्हें स्थायी बनाने का प्रयत्न करना महान अपराध है । हे चपल मानव ! तू क्यों मोहांध हो गया है ? इस सारहीन दुनियां में सार नहीं है, उसकी कोई स्थायी सत्ता नहीं है ।

पृ० ४६

विदूषक=मसखरा । रेचक=वह दबा जिससे दस्त आए । वस्तिकर्म=अनीमा । निदान=रोग-निर्णय । अजीर्ण=अपच । मिथ्या आहार=अपवित्र भोजन । मिथ्या विहार=दूषित भाग । केचुल=केंचुली । मणिमयी=सुन्दरी । तात्पर्य = मतलब ।

पृ० ५०

पुटपाक=औषधि की भस्म आदि बनाने के लिए उसे बंद मुँह वाले बर्तन में रखकर पकाना । जीर्ण=वृद्ध । अनुकरण=नकल । सहोदरा भगिनी=सगी बहिन । अनिष्ट=हानि ।

पृ० ५१

अमात्य=मंत्री । अनुचरगण=सेवकों का समूह । यथास्थान=अपने-अपने स्थान पर । तिरस्कार=अपमान । षड्यंत्र=जाल । परिपक्व=पकी हुई, समझ-दारी की । उत्तेजित=क्रोधित । उद्योग=प्रयत्न । प्रलोभन=लोभ । पितृ-भक्ति=पिता की भक्ति ।

पृ० ५२

मिश्रण=मिलावट । विश्वश्रुत=संसार में प्रसिद्ध । गाथा=कहानी । उत्तर-प्रत्युत्तर=जवाब-सवाल । सदृश = समान । दयानिधे = दया की राशि । मार्जनीय=माफ करने योग्य, (मार्जना=क्षमा) । कलुषित=दूषित । दुराचारी=पापी । निर्भीक=निडर । अशिष्ट=असभ्य । वञ्चित किया गया=हटा दिया गया । राजमहिषी=राज माता । जीविका-निर्वाह=जीवन बिताने के लिए । कोष=खजाना । व्यय=खर्च । अबोध=मूर्ख ।

पृ० ५३

कलंकित कर्म=बुरा काम । प्रत्यक्ष=साफ । दौवारिक=द्वारपाल । यन्त्रणा=पीड़ा । सपत्नी-पुत्र = सौत का पुत्र । भिक्षा = भिक्षा में दिया हुआ अन्न ।

कुछ अन्यथा = कुछ और ।

पृ० ५४

दिव्य = देवताओं जैसा । कुलशील पालन = कुल की मर्यादा का पालन ।
आर्य-ललना = आर्य-नारी । परमोज्ज्वल = अत्यन्त शोभा वाला ।

“सम्राट

न करेंगे ।”

शब्दार्थ—सम्राट = महाराज । विजयिनी पताका = जीतने वाली ध्वजा ।
अरुणोदय = सूर्य का उदय, लालिमा । बर्बर = जंगली । रक्त = खून । प्रचण्ड =
उग्र । श्री चरणों का = आपके पूज्य चरणों का ।

भावार्थ—महाराज ! युद्ध में सदा जीतने वाली कोशल की ध्वजा को
देखकर अपनी सेना के वीरों में प्रातःकाल सा तेज छा जाता है । दुश्मनों को
वह लाल खून से नहला देने के लिए ही रण-क्षेत्र में आजाती है । हिमालय
के समीपवर्ती देश को जंगली लिच्छवी सेना के खून से और भी शीतल कर
दिया है । हिमालय के समीपवर्ती प्रदेश शीतल होते हैं । खून गर्म होता है ।
फिर वे प्रदेश उस खून से ठंडे कैसे हुए ? ठंडे से तात्पर्य है वहां की विद्रोह
की आग ठंडी कर दी गई है । कोशल की वीरता और साहस को देखकर
शान्ति भी उसके अधीन होकर वहाँ पहरा दे रही है । सर्वत्र शान्ति का राज्य
है । इस सफलता का कारण तो आपके पूज्य चरणों का ही प्रताप है । मैं तो
केवल निमित्त-मात्र हूँ । अब कहीं भी अशान्ति नहीं है । जंगली विदेशी इतने
भयभीत होकर भागे हैं कि अब सैकड़ों वर्षों तक वे भारत की ओर मुख
नहीं फेरेंगे ।

अभिनन्दन = सत्कार । स्मरण-चिह्न = याद की निशानी । पट-परिवर्तन =
पर्दा बदलना ।

पृ० ५५

प्रकोष्ठ = दरवाजे के पास का कमरा, घर के बीच का आंगन । एकाकी =
अकेला ।

“घोर

कंटक स्वरूप हैं ।”

शब्दार्थ—घोर = भयंकर । पराकाष्ठा = सीमा । भैरव नाद = भयङ्कर गर्जन ।
विकास-सूत्र = उन्नति का धागा । कुसुम = फूल । नीरव = शान्त । अभिलाषा =

इच्छा । नीड़ = घोंसला । उन्माद=मस्ती । सहकारिणी=संगिनी । अर्द्धरात्रि= आधी रात । आलोकपूर्ण = प्रकाश से भरा हुआ । नक्षत्रलोक=तारे का लोक । हीरक-कुसुम = हीरे का फूल । अभिनन्दन=सत्कार, स्वागत । शिशिर-कण=ओस की बूँद । सिक्त=भीगा हुआ । चाटुकार=खुशामदी । मलयानिल= मलय-पवन । परिमल = सुगन्ध । परिचारक=सेवक । बरजोरी = बलवान । मल्लिका = एक प्रकार का वेला जिसे मोतिया कहते हैं । वृन्त=पत्ता । जटिल= समस्याओं से भरा हुआ । कुटिल = बुरी । आलबाल=पौधे के चारों ओर बनाया हुआ गड्ढा । रमणी=स्त्री । इन्द्रजाल=जादू । क्रूर=निष्ठुर । उष्णीष= पगड़ी, मुकुट । कंटक स्वरूप=काँटे के समान ।

भावार्थ—मेरा भयंकर अनादर हुआ है । बेजजती की हद हो गई । मुझे चारों ओर अपमान का भयंकर गर्जन सुनाई दे रहा है । मुझसे यह अपमान नहीं सहा जाएगा । मैं बहुत पहले ही इस कलंकित देश को त्यागकर चला जाता किन्तु मेरे जीवन के विकास का धागा एक सुकुमार फूल से बँध गया है । जो उद्धत कुमार एक राज्य के प्रलोभ को त्याग सकता है, वही प्रेम की कोमलता में बँध गया है । मेरा हृदय शान्त इच्छाओं का घोंसला बन गया है । मन में अनेकानेक इच्छाएँ उठ रही हैं । यौवन के आरम्भ में मैंने प्रेम का वह मधुर सपना देखा था । उसने मुझे ऐसा मस्त कर दिया है मानो मैंने सारी शराब पी डाली हो । उसी सपने में मेरी प्रेम की सुकुमार कल्पनाएँ भरी हैं जो मदहोश कर देती हैं । मैंने जब से मल्लिका को देखा है तभी से हृदय में रम्य कल्पनाएँ उठ-उठकर मुझे बदमस्त किए देती हैं । मैंने मल्लिका को अपनी जवानी की पहली ग्रीष्म ऋतु की आधी रात के समान कांतिमान तारे से उतरते हुए हीरे के फूल के समान देखा था । उसे देखकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह किसी नक्षत्रलोक में फूलने वाला हीरे का फूल था । उस समय संसार भर का मधुर संगीत मल्लिका के आगमन का स्वागत कर रहा था, और आगे बढ़कर उसे आदरपूर्वक लाने के लिए नक्षत्रलोक को गया था । जब कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति किसी सभा में आता है, तो उसे लाने के लिए लोग बाहर तक जाते हैं । उसके आ जाने पर उसके सम्मान में शुभागमन का गीत गाया जाता है । ओस की बूँदों से भीगी वायु तुम्हारे

उतरने की सीढ़ी बनी थी। उषा ने तुम्हारा स्वागत किया था। खुशामदी मलय-पवन तुम्हारी सुगन्धि लेने के लिए एक पत्ते पर बिठाकर तुम्हारी सेवा करने लगा। सारी प्रकृति तुम्हारा स्वागत करने में तल्लीन होगई। उस पवन ने तुम्हें वहाँ बिठाकर फिर तुम्हें वहाँ से गिरा दिया। जैसे ही तुम धरती पर आईं तुम इस कपटपूर्ण संसार की दोष भरी गृहस्थी के आलबाल में फँस गईं। सबने तुम्हें गृहस्थी के जाल में फँसी हुई एक अनुपम सुन्दर नारी के रूप में देखा। प्रभात के समय मैंने जो वह सपना देखा वह आज मुझे विचित्र जादू प्रतीत हो रहा है। निष्ठुर हृदय वाले सिपाही सेनापति बन्धुल ने तुम्हें अपने मुकुट को सजाने वाला फूल बना लिया। पौधों को बचाने के लिए उनके आसपास कँटीली भाड़ियाँ लगा देते हैं। विरुद्धक कहता है कि मैंने कँटीली भाड़ी बनकर मल्लिका रूपी फूल को अपने में सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया किन्तु बन्धुल ने उसे हस्तगत कर लिया। आज भी हम कोशल के लिए काँटे बने हुए हैं। कोशल हमें शंका की दृष्टि से देखता है।

विशेष—प्रसाद ने मल्लिका का चित्रण एक पुष्प के खिलने के समान किया है। रात्रि में जो कली है उषा के समय वही फूल बन जाती है। रात को कली कहाँ से आई? प्रसाद कल्पना करता है कि नक्षत्रलोक से। उषा फूल का स्वागत करती है। पवन उसे डोलाता है, उसकी सुगन्धि ग्रहण करता है। पवन के तेज झटके से फूल आलबाल में गिर पड़ता है।

पृ० ५६

रोदनशीला = रोने वाली। प्रकृति = स्वभाव। तिरस्कृत = अपमानित। पोच = कायरता की। निस्तेज = शक्तिहीन।

“बालक !

अधिकार नहीं।”

शब्दार्थ—पौरुष=पराक्रम। जन्मसिद्ध=जन्म से ही प्राप्त। प्रत्यक्ष=साफ दिखाई देने वाला। अवहेलना=उपेक्षा। महत्वाकांक्षा=महान बनने की इच्छा। प्रदीप्त = जलते हुए। प्रस्तुत = तैयार। दमन = नाश। कालस्वरूप=मृत्यु के समान। पुरुषार्थ=साहस।

भावार्थ—बालक ! मनुष्य इच्छाशक्ति और पराक्रम के बल पर ही बड़ा बन सकता है। जिसमें अपने निश्चय पर अड़े रहने की शक्ति नहीं है,

जो बाधाओं से घबराकर उद्योग करना बन्द कर देता है, वह कभी भी किसी भी काम में सफल नहीं हो सकता। मैं राजा की रानी बनी मैंने राजमाता का पद प्राप्त किया। जन्म से ही जो संपत्ति या अधिकार प्राप्त होता है, उसकी रक्षा तो तभी हो सकती है जब दूसरे मनुष्य उसका समर्थन करें। यदि समाज जन्म से प्राप्त संपत्ति को छीन लेना चाहे या किसी दूसरे को दे देना चाहे तो दुर्बल व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकता। किन्तु जो व्यक्ति अपनी साधना के द्वारा कोई वस्तु या पद प्राप्त करता है, वही उसकी अक्षय संपत्ति बन जाती है। संसार का यह नियम है कि छोटी वस्तुएं बड़ी बनती जाती हैं। हरेक वस्तु समय की गति के साथ-साथ अधिक शक्ति प्राप्त करती जाती है। तुम क्यों इस नियम के अनुसार काम नहीं करते ? तुम्हें भी महान बनने के लिए, ऊँचा उठने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। महान बनने की इच्छा एक जलते हुए अग्निकुण्ड के समान है। महान बनने के मार्ग में आग सी घोर विपत्तियाँ हैं। तुम इन विपत्तियों की ज्वाला को सहन करने के लिए तैयार हो जाओ। जो भी तुम्हारे विरोध में आए उसे मिटा दो। और वीरता के साथ उससे युद्ध करो। इस प्रकार अपना कर्तव्य कर लेने पर ही सफल हो सकते हैं। या तो वे विरोधी शक्तियाँ तुम पर विजय प्राप्त करले, और या तुम उन्हें जीत लो। यदि तुम विजयी हुए तो मल्लिका की तो बात ही क्या है स्वयं राज्यलक्ष्मी तुम्हारे चरणों की दासी बन जायगी। परिश्रम करो। यदि जीवित रहना चाहते हो तो साधनामय जीवन व्यतीत करो। इस प्रकार कर्म से विमुक्त होकर, साहस से हाथ धोकर जीवित रहकर तुम मेरे दूध को लज्जित मत करो।

प्रतिशोध=बदला। लक्ष्य=उद्देश्य। संहार=नाश। क्रूर=कठोर। उत्तीर्ण=पास।

पृ० ५५

प्रयास=प्रयत्न।

“मीड़ मत

उस पार।”

शब्दार्थ—मीड़ना=दो या दो से अधिक स्वरों को इस सुन्दरता से बजाना कि दोनों के बीच में अवकाश न मालूम पड़े, बजाना। अनुकम्पा=दया।

मूर्च्छित=मूर्च्छित कर देने वाली (विशेषण विपर्यय) । मूर्च्छना=स्वर-लहरी । निस्सार = व्यर्थ । मूक तन्त्र=शान्त वीणा । विचलित कर मधु मौन मन्त्र को= सुन्दर शान्ति को भंग कर के । मसल उठेगी = तड़प उठेगी, बज उठेगी । सकरण=सदय । नग्न विकलता = तीव्र व्याकुलता ।

भावार्थ :—हे निष्ठुर उङ्गली ! तू ठहर जा ; वीणा के खिंचे हुए तारों को मत बजा । एक क्षण भर के लिए तू दयालु बन जा और तारों को मत छेड़ क्योंकि यदि तू वीणा बजाएगी तो आह के समान दर्द भरी, मूर्च्छित कर देने वाली संगीत लहरी व्यर्थ ही तरंगित हो उठेगी । पद्मावती दुखी है । दर्द भरे संगीत को सुनकर वह और भी दुखी हो जाएगी । इसीलिए वह उंगली को वीणा बजाने से रोकती है । इस शान्त वीणा को छेड़ कर, मधुर शान्ति को तोड़कर तू लीन हो कर स्वरो के संसार को सूने वायु में मत बिखेर दे । दुखी व्यक्ति एकान्त में रहना चाहता है । जहाँ सब शान्त हो । दुख में पद्मावती को सारा वातावरण सूना दिखाई देता है । वीणा का संगीत उसके मन को बहला नहीं सकता । इसलिए वह व्यर्थ में ही उस सूने वातावरण में लीन हो जाएगी । दर्द भरी वीणा बज उठेगी । उसकी दर्दिली तान को सुन कर मेरा हृदय रो उठेगा । और मेरी चेतना में भयंकर व्याकुलता भर जाएगी ।

‘परदे के उस पार’ का अर्थ स्पष्ट नहीं है । व्यंग्य अप्रस्तुत चित्र यह है कि जब रंगमंच पर नृत्य होता है तो सभी दर्शक उसमें लीन हो जाते हैं ।

दुरवस्था = बुरी अवस्था । अमोघ = कभी व्यर्थ न जाने वाली । निश्चित प्रभाव डालने वाली । सान्त्वना=समझाना । असन्तुष्ट=नाराज ।

पृ० ५६

अनुनय-विनय=प्रार्थना । राजभक्त=राजा पर श्रद्धा रखने वाला ।

“हमारा गरल है ।”

शब्दार्थ :—प्रेमनिधि=प्रेम का खजाना । गरल = विष ।

भावार्थ :—हमारा प्रेम सुन्दर है, सरल है । वह तो जीवन-दान देने वाले अमृत के समान है । उसमें कपट का विष नहीं है ।

नेपथ्य=रंगमंच के परदे के पीछे का स्थान । संघ=बौद्ध-भिक्कुओं का

धार्मिक समाज । करुणा निधान=दयावान भगवान बुद्ध । पापीयसी=पापिनी । निष्कर्ष=सार । रमणी-रत्न = स्त्रियों में रत्न के समान श्रेष्ठ । सहचर=साथी । प्रभुत्व=सत्ता, शक्ति । दुराचारिणी=पापे । छलना=धोका ।

पृ० ६०

छलना = छल, भ्रम । विचारक-दृष्टि=विचार करने वाली नजर । आकर्षित करना=खींचना । हलाहल=विष । सर्वस्व = सब कुछ । ध्येय=लक्ष्य । समक्ष=सामने । माया = जादू । मद्यप = शराबी । प्रलाप=बकवास ।

पृ० ६१

प्रणय-लीला=प्रेम का खेल । पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम को प्रणय कहते हैं ।

पृ० ६२

उपद्रव = अशान्ति, फसाद । विकट = भयंकर । आतंक=भय ।

पृ० ६३

विमाता=सौतेली माँ । व्यंग्य स्वर=कटाक्ष । प्रतिकार=बदला । अपदस्थ=पद से हटाना । वृद्धि=उन्नति । अतिरिक्त=सिवाय । राजस्व=राज कर । लिप्त=लगा हुआ, फँसा हुआ । प्रतिद्वन्दी = शत्रु । परिषद् = सभा जिसकी सलाह से राजा शासन चलाता था । आह्वान करो=बुलाओ । सम्य=सामन्त ।

पृ० ६४

अनुचर=सेवक । सुयोग = सुखद संयोग । पुरस्कार = इनाम ।

“गुरुदेव

गतिशील हैं ।”

शब्दार्थ :—अनुकूल = शुभ, इच्छित । नियन्त्रण=गुलामी । संसार का कीचड़=सौंसारिक वासनाएँ । निमज्जित = डूबी हुई । पद्धति=ढंग । उद्योग=प्रयत्न ।

भावार्थ :—गुरुदेव ! यह घटना तो बड़ी ही शुभ है । जिस प्रकार मगध में वृद्ध राजे को हटा कर युवराज ने शासन अपने हाथों में लिया है, उसी प्रकार कोशल का राजकुमार भी अपने पिता को हटाकर राजा बनना चाहता है । पता नहीं क्यों इन वृद्धों को राज्य का इतना लालच है । यह राजतन्त्र की शासन-पद्धति पुरानी होगई है; इसमें से गुलामी की बू आती है; यह

सांसारिक वासनाओं में डूबी हुई है। किन्तु क्या यह जर्जर पद्धति नए प्रयत्नों को दबा देगी ? जो व्यक्ति अपने विचारों को बदलना नहीं जानता, जो रूढ़िवादी हैं, उसे अवश्य ही मिट जाना चाहिये क्योंकि परिवर्तन ही इस संसार का नियम है। जो व्यक्ति इस नियम के विरुद्ध जाएगा, प्रकृति उसे कुचल देगी।

जर्जर=निर्वल, कमजोर। संगठित=एकत्रित, प्राप्त। भद्रजन=सज्जन व्यक्ति। दुराग्रही=जिद्दी।

पृ० ६५

अभिवादन=प्रणाम। श्रीवृद्धि=तेज की उन्नति। प्रकांड=भारी। किशोर जीवन=बचपन। कौतुक=खेल। गुप्त=छिपी हुई। शुभेच्छा=मंगल-कामना। अभीष्ट=इच्छित। पददलित=पाँव से कुचलना। कौटुम्बिक=पारिवारिक। दुर्दशा=बुरी दशा। विप्लव=क्रान्ति। दुश्चेष्टा=नीच प्रयत्न।

पृ० ६६

सम्पन्न=धनी-मानी। सुरम्य=सुन्दर। प्रस्तुत=तैयार। विसर्जन=त्यागना। निर्धारित=निश्चित। विनीत=विनम्र। आप सदृश=आपके समान। सर्वलोक=सारा संसार। उद्धार=रक्षा। सम्मति=राय। दमन करना=कुचलना। अग्रसर=आगे बढ़ना। गुप्त-प्रतिनिधि=गुप्त-दूत।

पृ० ६७

वश्यता=आधीनता। अनुमति=आज्ञा। तात्पर्य=मतलब। बाध्य=मजबूर। मन्त्रणा=सलाह। गौरव=महत्ता। नियन्त्रण=वश में रखना। मर्यादा=राज्य का नियम।

पृ० ६८

सामन्त=सरदार। रुचिकर=अच्छा लगना। आडम्बर=दिखावा। कपटाचरण=धोके का व्यवहार। तिरस्कृत=अपमानित। निर्वासित=देश निकाला देना।

पृ० ७०

स्वत्व=अभिमान, अहं। बाहुबल=बाजुओं का जोर। उपार्जन=कमाना। मृगया=शिकार। साहसिक=डाकू। वृत्ति=रोजगार, कामधंधा।

दुराचरण = बुरा आचरण । आतंक=भय, जुल्म । उपद्रव=अशान्ति । आह्वान=पुकारना । हस्तगत=हाथ में लेना, प्राप्त करना । उत्तेजित = नाराज, क्रुब्ध । सम्भावना=आशा ।

पृ० ७१

आतंक=भय । अस्तित्व=सत्ता, जीवन । स्वगत = अपने आप ।

‘रात्रि

ज्वाला की पीड़ा ।’

शब्दार्थ :—प्रेममयी रमणी=प्रेमिका नारी । पक्षिवृन्द = पक्षियों का समूह । नीरव=शान्त । इङ्कित=इशारा । समस्या=उलझन । निमग्न=डूबा हुआ । अतृप्त-वासना = प्यासी कामना । वार-विलासिनी = वेश्या । श्रेष्ठी = सेठ । सापक्ष्य ज्वाला की पीड़ा=सौत का दुःख ।

भावार्थ :—रात बड़ी भयानक है किन्तु वह प्रेम करने वाली स्त्री के हृदय से भयानक नहीं हो सकती । रात की भयंकरता को देखकर वायु भी धीरे-धीरे साँस ले रही है । पक्षियों का समूह भी उसी कारण भयभीत होकर अपने-अपने घोंसलों में जाकर छिप गया है । आस्मान पर सभी तारे शांत हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने कोई भयभीत करने वाला दृश्य देख लिया है । इसीलिए वे आपस में बात नहीं करते । हाँ टिमटिमा कर एक दूसरे को इशारे कर रहे हैं । सारा संसार किसी भयानक समस्या में डूबा हुआ है । जब मनुष्य किसी उलझन को सुलझाने में लगा होता है वह एक-दम शान्त होकर मनन करता रहता है । सारे संसार में शान्ति का साम्राज्य है । किन्तु रात्रि की इस भयंकरता से न डर कर मैं शैलेन्द्र से मिलने आई हूँ । एक तो रात डरावनी और दूसरा शैलेन्द्र जैसे हिंसक डाकू से मिलने के लिए आना । इसीलिए तो प्रेम करने वाली स्त्री रात से भी अधिक डरावनी है । शैलेन्द्र डाकू है । किन्तु श्यामा सोचती है कि मुझे उससे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है । मेरी कामना भी तो प्यासी है । मुझे उसकी भयंकरता में भी उसी से मिलन की कामना है । जो मुझे उससे मिलाने के लिए खींच लाई है । एकाएक श्यामा को अपनी पूर्व गौरवपूर्ण अवस्था का ध्यान आता है । कहां राजरानी मागन्धी और कहीं एक डाकू के पीछे भागने वाली एक वेश्या ! एकाएक उसके मुख से निकलता है मागन्धी । और वह अपने से

ती हैं कि मागन्धी का नाम भी न लो । वह तो कौशाम्बी में महल की ग में जलकर भस्म होगई है । अब तो मैं काशी की प्रसिद्ध वेश्या श्यामा । बड़े-बड़े सामन्त और सेठ आज मेरे पाँव को छूकर अपने को धन्य मानते । अनन्त धन है; आदर की सीमा नहीं है । राजा की रानी बने रहने पर इतना सब कुछ कभी प्राप्त नहीं होता । हां केवल सौतिया डाह में जना पड़ता है ।

पृ० ७२

घोर कानन=भयंकर बन । अतिरिक्त=सिवाय । सिद्धांत=नियम ।

“तो क्या

प्रियतम ।”

शब्दार्थ—आन्तरिक प्रेम=हृदय का प्रेम । शीतलता=सुख । स्पर्श= ॥ । प्रणय-भिन्ना=प्रेम की भीख । कृत्रिमता=बनावटीपन । बनिज=व्यापार । कृतिक-स्नेह=स्वाभाविक प्रेम । स्रोत=भरना । क्रूर = निर्दय । चेतनालोक= ज्ञान का संसार । कोमल स्पन्दन = मधुर कंपन । अवशिष्ट = शेष ।

भावार्थ—तो क्या अभी तक तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं हुआ ? इतने जवने समय में मैं अपना घर त्यागकर तुम्हारे पास प्रेम की भीख माँगने ई हूँ । ऐसी दशा में कोई भी अन्य मनुष्य होता, जो प्रेम के सुख से चित होता, तो वह अवश्य मुझ पर विश्वास करता । क्या तुम मनुष्य नहीं क्या तुमने कभी भी हृदय के प्रेम के सुख का अनुभव नहीं किया ?

तुम मुझे प्रेम की भीख नहीं दोगे ? मैं वेश्या के इस नकली जीवन में न-रात प्रेम का व्यापार किया करती हूँ । तो क्या ऐसा करते-करते स्वाभाविक प्रेम का भरना सख जाता है ? दिन रात मैं प्रेम का नाटक खेलती हूँ । नु वह तो केवल वासना का सौदा है । वहाँ प्रेम का नाम भी नहीं है । र प्रेम करना तो मनुष्य का स्वभाव ही है । अतः वेश्याएँ भी प्रेम करती हैं और करती हैं । और आज मेरा प्रेम तुम्हारी ओर बह निकला है । नु तुम ठुकरा रहे हो । क्या चोरी, हत्या आदि निष्ठुर काम ते-करते तुम्हारे हृदय में स्वाभाविक इच्छा और प्रेम की झंकार बिल्कुल गई है । क्या तुम्हारा शरीर केवल माँस की मूर्ति भर है जिसमें कि हृदय इच्छाएँ मर चुकी हैं । तुम्हारे शरीर में रक्त का प्रवाह नहीं है । नहीं-

नहीं प्रिय ऐसा नहीं है । तुम में भी प्रेम करने की इच्छा है किन्तु इस समय वह दब गई ।

पृ० ७३

“बहुत छिपाया

त्रिजय नहीं है ।”

शब्दार्थ—उफन पड़ा=उबल पड़ा । सतेज=ज्योतिवान्, चमकता हुआ । अनल=आग । शशांक=चन्द्रमा । शून्य=खाली, सूना । विरुद=यश । नीरद=बादल । दीपमालिका=दीपों की माला, दिवाली । स्वच्छ=विमल, साफ । चपल=चंचल । मृदुल=कोमल ?

भावार्थ—मैंने प्रेम को दबाने की बहुत कोशिश की किन्तु अब तो यह प्रेम नहीं है वरन् चमकती हुई आग बनकर सारे संसार में फैल गया है । जिस प्रकार अग्नि सर्वत्र विद्यमान है—चाहे अव्यक्त रूप में—उसी प्रकार अब मुझे सारा संसार प्रेममय दिखाई दे रहा है । कहीं ऐसा न हो कि आकाश पर बादल छा जाएँ, बिजलियाँ गिरने लगे, चारों ओर अन्धकार घिर आए । कहीं ऐसा न हो कि जिस प्रकार बादल चन्द्रमा को छिपा लेता है उसी प्रकार वियोग और उपेक्षा मेरे प्रियतम रूपी चन्द्रमा को छिपा दे । क्योंकि तुम्हारे दर्शनों के बिना और तुम्हारे प्रेम के अभाव में मेरा हृदय शून्य हो जाता है । कहीं कोयल वियोग में तड़प रही है और कहीं पपीहा बादलों को पुकार रहा है । किन्तु नीले बादल में जरा भी दया नहीं है । क्या तुम भी बादलों के समान निष्ठुर बनकर वैसा ही यश प्राप्त करना चाहते हो और क्या तुम्हें बादल की निष्ठुरता देखकर खुशी होती है । यदि तुम्हें बादल की निष्ठुरता पर खिन्नता होती है तो क्या तुम स्वयं निष्ठुर बनना चाहोगे ?

प्रेम की आग में प्राणों की दिवाली जल उठी है, जिससे हृदय की कुटिया साफ हो गई है । दिवाली पर कीड़े-पतंगे मर जाते हैं । प्रेम की आग में हृदय की वासना रूपी पतंगे जल गए हैं और वह पवित्र हो गया है । मैंने तुम्हारे स्वागत के लिए पलक रूपी पाँवड़े बिछा दिए हैं । मुझे अब और कोई भी भय नहीं है । हे चंचल प्रियतम ! तुम मुझ से छूटकर कहां जा रहे हो यदि तुम्हें जाना ही हो तो अपने कोमल चरणों से मेरे इस हृदय को

कुचलते हुए जाओ ताकि उसमें से आह निकले । इस प्रकार मेरे हृदय के मसले जाने में क्या मेरी विजय नहीं है ?

पृ० ७४

“वीर हृदय

नहीं है ।”

शब्दार्थ—वीर-हृदय=वह हृदय जिसमें वीरता भरी हुई है । भुजदण्ड=भुजाएँ । कठोर=कठिन । कंटक=काँटा । अनुराग=प्रेम । अस्तित्व=सत्ता । शृंगार मंजूषा=प्रेम की पिटारी । विलास=भोग । मदिरा=शराब ।

भावार्थ—युद्ध का नाम सुनकर ही पराक्रमी मनुष्यों का हृदय नाच उठता है । कायर युद्ध से डर जाते हैं किन्तु योद्धाओं के लिए युद्ध मनोविनोद की चीज है । लड़ाई का नाम सुनकर उनकी सबल बाहें अपने आप फड़कने लगती हैं । यदि मैं उन्हें रोकने का प्रयत्न भी करती तो वे नहीं रुकते । मेरे पति का कर्त्तव्य-मार्ग पहले ही बड़ा कठिन है । मैं काँटे के समान उनके मार्ग में आकर मार्ग की दुर्गमता को बढ़ाना नहीं चाहती । मुझे अपने स्वामी से प्रेम है और उन्हीं से मेरे भाग्य का सितारा चमक रहा है । किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वे केवल मेरे ही हैं । उनका एक अन्य व्यक्तित्व भी है जिसका सम्बन्ध राज-भक्ति और कर्त्तव्य पालन से है । उसे मैं अपनी प्रेम की पिटारी में बन्द करके नहीं रख सकती । मेरे पति महान् हैं और महान् व्यक्तियों को सुख-भोग की शराब पिलाकर मस्त कर लेना ही कर्त्तव्य नहीं है । उनकी महानता इसी में है कि जहाँ तक उनके कर्त्तव्य का सवाल है, उनके मार्ग में कोई बाधा न खड़ी की जाए ।

वे तलवार की धार हैं=वे तलवार की धार के समान सब शत्रुओं को काट फेंकने वाले हैं । वरेण्यदूत=श्रेष्ठ दूत । सम्मुख-युद्ध=सामने युद्ध में । शक्र=इन्द्र । प्रचण्ड = भयंकर ।

पृ० ७५

निर्भय=निडर । खड्ग-युद्ध=तलवारों की लड़ाई । आह्वान करना=पुकारना । अर्द्ध-मृतक=आधे मरे हुए । अस्त्र-वैद्य=अस्त्रों के घावों का इलाज करने वाला वैद्य । चिकित्सा=इलाज । स्वेच्छा से=इच्छा पूर्वक । राज्य-शक्ति का प्रलोभन=राज्य-पद का लोभ । आतंक=भय । निराद्रित=अप्रमानित ।

पृ० ७६

च्युत कराना=गिराना, डिगाना । अनुरोध=जिद् । द्रोही=शत्रु । दुर्विनीत धृष्ट, विनय हीन । महिषी=रानी । स्त्री-सुलभ=स्त्रियों में स्वभावतः=प्राप्त । समवेदना=सहानुभूति ।

पृ० ७७

स्वतः=अपने आप । प्रणय-लता=प्रेम रूपी लता । वज्रपात=वज्र गिराना । द्वन्द्वयुद्ध=दो व्यक्तियों का युद्ध । आह्वान=चुनौती चेलेंज । आतिथ्य-धर्म=मेह मानी का कर्तव्य । कुटीर=कुटिया । सदैव प्रस्तुत=हमेशा तैयार । नवागत=नया आया हुआ । विश्राम-गृह=आराम घर ।

पृ० ७८

सूली=फाँसी । सम्भार=साज । सम्भ्रान्त=सम्मानित ।

“स्वर्ण-पिंजर

सुख है ।

शब्दार्थ—स्वर्ण-पिंजर=सोने का पिंजरा । श्यामा एक पक्षी जिसका रंग काला और स्वर बहुत मीठा होता है । कसैला=कषाय स्वाद वाला । मुक्त=खुले । क्रन्दन=विलाप । परिमल=सुगन्धि । चन्द्रिका=चौंदनी । मलयानिल=मलय पवन, जो शीतल, मन्द और सुगन्धित होता है । अंगराग=शरीर पर लगाने का पौडर ।

भावार्थ—श्यामा पक्षी को जो सुख वृद्ध की डालियों पर आजादी से घूम-घूम कर कसैले फलों को चखने में आता है, वह उसे सोने के पिंजरे में भी प्राप्त नहीं हो सकता । गुलामी चाहे कितनी ही सुख पूर्ण क्यों न हो, आजादी की अपेक्षा तुच्छ है । वह आकाश में नन्दे-नन्दे परों को फैलाकर स्वेच्छा से उड़ती है । मधुर गाना गाती है । उस स्वतन्त्रता के गाने के सामने उसका पिंजरे का गान तो विलाप के समान दिखाई देता है । जिस प्रकार कोई श्यामा पक्षी सोने के पिंजरे से छूटकर बाहर आई हो, उसी प्रकार मैं भी राज-महल की गुलामी से बाहर आई हूँ । अब मैं स्वयं भी हँसूँगी और दूसरों को हँसाऊँगी, स्वयं रोजूँगी तो दूसरों को भी रुलाऊँगी । फूल के समान इस संसार में आई हूँ और सुगन्धि के समान यहाँ से चली जाऊँगी । कभी भी पराधीनता के जाल में नहीं पड़ूँगी । चाहे फूलों की पुष्परज का

पौडर बनाने में कितनी ही कलियाँ क्यों न बर्बाद करनी पड़े, मैं तो उसी पौडर का प्रयोग करूँगी। अपने सुख और सन्तोष के लिए चाहे कितनी ही जानें कुचल दी जाएं किन्तु मुझे कुछ चिन्ता नहीं है। फूलों को तोड़कर उन्हें कुचल देने में ही मुझे सुख होता है।

दुर्वीनीत=विनय रहित । आतिथ्य=मेहमान-नबाजी । सम्भावना = आशा । अनुग्रह = कृपा ।

“चला है

मन का।”

शब्दार्थ—मन्थर गति=धीरे । नन्दकानन=इन्द्र का बन । मधुकर=भँवरे । वृन्द=समूह । यौवन की किरण=यौवन की सुषमा । अरविन्द=कमल । आनन=मुख । मद्य=शराब । विधि=करने योग्य कर्म । निषेध=वर्जित कर्म । आज करलो अपने मन का=आज अपने मन की बात पूरी करलो ।

भावार्थ—नन्दकानन का मधुर पवन धीरे-धीरे चल रहा है। भँवरों के समूह फूलों पर गुझार करते हुए आनन्द की भैरवी गा रहे हैं। पता नहीं किस अलौकिक यौवन का आकर्षण चारों ओर बिखर रहा है। चारों ओर का वातावरण अत्यन्त मनोहर है। कमल खिला हुआ है। किसके मुख की स्मृति बार-बार आ रही है। प्रकृति भी विलासी संसार को शराब पिलाती है फिर मला व्यक्ति उसे क्यों न पिए। उषा संसार को सुरम्य शराब पिलाती है। प्रकृति उस पर फूलों की वर्षा करती है। एक बार शराब पीकर मस्त हो जाओ और फिर शास्त्रों की विधि-निषेध की भूल तुम्हें शात होगी। तभी तुम जान पाओगे कि विधि निषेध एक पाखण्ड मात्र है। आज तो अपने मन की इच्छा पूरी करलो।

तीव्र मादक = तेज नशा देने वाली शराब । इंगित=इशारा । चंचल = अस्थिर । शिष्टाचार-वश=सभ्यता के नाते ।

पृ० ८०

धनिष्ठता=अधिक परिचय । व्यर्थ=बेकार । अन्तरंग = पक्के, गहरे । धरवनिता=वेश्या ।

पृ० ८१

अवकाश=मौका ।

“तुम्हारी

तेरे ।”

शब्दार्थ—मोहनी छवि=मोह लेने वाली शोभा । अखिल=समस्त ।
भूलोक = संसार । मृदु = कोमल ।

भावार्थ—तुम्हारी सुन्दर शोभा पर मेरे प्राण भी न्यौछावर हैं, और तुम्हारी मीठी, सुकुमार हँसी पर मैं सारे संसार का वैभव बलिदान करती हूँ ।

पृ० ८२

“संसार में

बलि दो ।”

शब्दार्थ—वञ्चित = रहित । निर्दय चेतना = दुख का भाव । अचेतन = बेहोश । आतंक = भय । दम्भ = पाखण्ड ।

भावार्थ—स्त्रियों का सर्वस्व पति ही होता है किन्तु आज मुझ से मेरा सर्वस्व छिन गया है । मेरा सुख और भाग्य मुझे त्याग गया है । हृदय काँप रहा है । दुख के वेग में कंठ भरा रहा है । एक कठोर दुख मेरे सारे शरीर को शक्तिहीन और जड़ बना रहा है । हे प्रभु ! मुझे शक्ति दो ताकि मैं इन दुखों को सहन कर सकूँ । मेरे मन में यह निश्चय भर दो कि तुम्हारा सहारा प्राप्त कर लेने के पश्चात् फिर कोई भय नहीं रह जाता । तुम्हारी शरण में जाने से जो आनन्द प्राप्त होता है वह दुखों और मुसीबतों को हमेशा कुचल देता है, और फिर संसार की भयंकरता से मन भयभीत नहीं होता । मैं जानती हूँ कि मनुष्य दुर्बलताओं के रहते हुए भी उनकी उपेक्षा कर संसार को यह दिखाने का प्रयास करता है कि मैं शक्तिवान हूँ और सदैव परिस्थितियों से ऊपर हूँ । किन्तु मुझे यह नहीं चाहिए । मैं हृदय को वश में करना चाहती हूँ, संसार को यह नहीं दिखाना चाहती कि मैं तपस्विनी हूँ जब कि मेरे मन में दुख का तूफान उठ रहा हो । हे प्रभु ! मुझे शक्ति दो ताकि मैं शान्त हो सकूँ, दुख की इस आँधी के वेग को सह सकूँ ।

निस्पन्द=गतिहीन, वैधव्य दुख=विधवा होने की पीड़ा । कठोर अभिशाप=भयंकर शाप । सान्त्वना=सन्तोष । अवलम्ब=सहारा ।

पृ० ८३

सद्धर्म=सत्य धर्म ।

“तथा गत

जय हो ।”

शब्दार्थ :—तथागत=बुद्धा । निर्मल=पवित्र । दिव्य करुण=दैवी स्नेह । प्लावित किया = भर दिया । अमिनाभ = अत्यन्त प्रभा वाले ।

भावार्थ—महात्मा बुद्ध ! तुम धन्य हो । तुम्हारे प्रवचनों को सुनकर हृदय पवित्र हो जाता है । मन के सब दोष दूर हो जाते हैं । तुमने यह बताया कि संसार में दुख ही दुख है । इतना ही नहीं तुमने उस दुख से मुक्त होने का उपाय भी बताया । तुमने संसार के सामने यह सत्य रखा कि देवराज इन्द्र से लेकर मामूली कीड़े तक सभी समान हैं । प्राणिमात्र में ऊँच-नीच नहीं है । तुमने उन व्यक्तियों को गले से लगाया जो नीच कहलाते थे; तुमने दुखी व्यक्तियों को सहारा दिया है, और अपने दैवी स्नेह से सारे संसार को भर दिया । विश्वभर के लिये तुम्हारे हृदय में प्रेम और दया है । हे ज्योतिर्मान ! तुम्हारी विजय हो ।

आयोतन = प्रबन्ध । आतिथ्य = महमानों की सेवा करना । तृप्ति=शांति । पावन=पवित्र ।

पृ० ८४

स्वर्णपात्र=सोने का बर्तन । कलंक-मात्र=केवल दोष । यथार्थ = ठीक । रुष्ट=नाराज । क्षोभ=दुख । विचलित=चंचल । मूर्तिमती धर्म-परायणता=धर्म की लगन की मूर्ति । महिमामयी = महानदेवी । काषाय = भगवे वस्त्र । चित्त शुद्धि=हृदय की पवित्रता ।

“पतित पावन

न होऊँ ।”

शब्दार्थ :—पतितपावन=गिरे हुए व्यक्तियों को पवित्र करने वाला । अमोघ = कभी असफल न होने वाला । दृश्यो=दृश्य संसार । नश्वरता=क्षण-भंगुरता । धर्म-शासन = धर्म का नियम ।

भावार्थ :—गिरे हुए व्यक्तियों का उद्धार करने वाले महात्मा बुद्ध ने दृश्य संसार की क्षणभंगुरता को दिखाया । अब मुझ पर यह प्रकट हो गया है कि दृश्यो की नश्वरता का जो दुख है जह वास्तव में मोह की कमजोरी है । मनुष्य जब संसार के मोह में जड़ जाता है तब उसके लिये सारा संसार दुख-मय हो जाता है । किन्तु अब मैं महात्मा बुद्ध के धर्म सिद्धांतों से कभी भी मुँह न मोड़ूँगी । सदैव उनके अनुसार आचरण करूँगी क्योंकि उस धर्म

पर चलना मनुष्य-मात्र का अधिकार है। स्त्रियों और निम्नवर्गों को भी उसे ग्रहण करने की स्वतन्त्रता है। वह धर्मपद्धति मनुष्य को धैर्य का असीम सुख देता है। वास्तव में तो जीवन का विश्वास है, जीवन की सच्चाई और वास्तविकता उसमें प्राप्त होती है। हे महापुरुष ! आप मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं इस पावन धर्म-मार्ग से कभी भी न डिगूँ।

पृ० ८५

विश्वमैत्री के अनुरोध से=संसार भर की मित्रता के कारण। प्रत्युत=बल्कि। द्वेष=घृणा। महस्थिविर=बौद्ध भिक्षुओं में महान। अभिवादन=प्रणाम। प्रवञ्चना=धोका। मध्याह्न=दुपहर—प्रलय काल का सूर्य बड़ा प्रचंड होता है और उस पर भी दुपहरी का। भीषणता=भयंकरता। छाया=शान्ति-पूर्ण स्थान।

पृ० ८६—८७

“रात में

यही न ?”

शब्दार्थ—नीला पर्दा=आकाश। निशाकार=चाँद। कृष्णकुहू=काली अमावस्या। निरीह = निस्सहाय। प्रभञ्जन=तेज हवा। सम=समान। नियामक=नियम बनाने वाला। बबंडर=तूफान। असम्भावित=जिस की सम्भावना न हो। वात्यावक्र=तूफान। विप्लव = क्रांति। उच्छृंखलता=नियम हीनता।

भावार्थ—जब रात के समय तारों में प्रकाश अधिक होता है तो चन्द्रमा छिपा रहता है और जब चन्द्रमा की कलाएं बढ़ने लगती तो तारों की ज्योति कम हो जाती है। क्या इसी को शुक्लपक्ष और कृष्ण पक्ष कहते हैं ? क्या तुमने भी कभी इस पर विचार किया है। कृष्ण पक्ष दुख और अवनति का प्रतीक है शुक्ल पक्ष उन्नति और सुख का। जिस प्रकार प्रकृति में कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष का चक्र चला करता है उसी प्रकार जीवन में भी कभी सुख और कभी दुख आया ही करते हैं।

आर्यपुत्र ! मैं तो यह समझती हूँ कि नीले आकाश का पर्दा ही प्रकृति के इस परिवर्तन के रहस्य को छिपाए रहता है। जैसे उसकी इच्छा होती है वैसे ही वह इस भेद को प्रकट करता है। कभी तो वह चन्द्रमा को छाती पर खिलाता है और उसकी ज्योति से संसार को शीतल करता है और कभी

अमावस्या की अंधेरी रात में तारों को खिला कर उनके साथ खेला करता है। जिस प्रकार नीला पर्दा कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष को बनाता बिगाड़ता रहता है उसी प्रकार भाग्य कभी सुख को प्रकट करता है और कभी दुख को।

कोमल पत्तियाँ तो चुपचाप वृक्षों पर लटकती रहती हैं। किसी से कुछ नहीं कहती। फिर उन्हें तेज हवा क्यों भकोरती है ? इसी प्रकार कुछ प्राणी ऐसे भी होते हैं जो किसी से कुछ नहीं कहते किन्तु समय उन्हें भी नीचा दिखलाता है।

वासवी उत्तर देती है कि हवा तो अपनी चाल से चला करती है। वह किसी से नहीं कहती कि तुम मेरे रास्ते में आओ। यदि कोई उसके मार्ग में पड़ता है तो उसे हिलना ही पड़ता है। वायु किसी के लिए अपनी गति नहीं बदल सकती। समय भी हवा के समान ही चला करता है। उसके मार्ग में चाहे पहाड़ हो और चाहे पत्ती, वह सभी में परिवर्तन उत्पन्न कर देता है।

बिम्बसार प्रश्न करता है कि वायु की चाल तो एक सी रहती है किन्तु समय की चाल तो एक सी नहीं रहती। इसका क्या कारण है ?

वासवी समय की इस गति को समझने के लिए ही तो बड़े-बड़े विचारक अनेक प्रकार से प्रयत्न करते हैं। विविध सिद्धान्तों द्वारा युग की विषमताओं को समझाने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु इतना प्रयत्न करने पर भी प्रत्येक नियम के कुछ-न-कुछ अपवाद निकल ही आते हैं। यह तो नहीं कहा जा सकता कि यह अपवाद नियमों के हैं या बनाने वालों के हैं। संभव है यह सीमाएँ नियमों की हों। यह भी सम्भव है कि नियम बनाने वाले ने समस्या का अपेक्षित विस्तृत अध्ययन न किया हो, या उसकी किसी कमजोरी के कारण वह नियम सार्वभौम न बन सका हो; किन्तु अपवाद होते अवश्य हैं। कदाचित् अपवाद को ही तूफान कहते हैं।

इससे तो यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक ऐसी घटना जिसकी सम्भावना नहीं होती, किसी बवंडर के फलस्वरूप ही होती है। नियम के अनुसार होने वाली घटनाएँ तो सम्भावित होती हैं। कुछ घटनाएँ नियम के अनुसार नहीं होती और इस प्रकार अपवाद स्वरूप होती हैं। उदाहरण के लिए नियम यह है कि जब पिता वानप्रस्था आश्रम में प्रवेश करे तब उसका पुत्र राजा

बने। इसका अपवाद यह होगा कि पुत्र बलपूर्वक पिता को सिंहासन से उतार कर स्वयं राजा बन जाए। यह नियम का अपवाद है, एक बवंडर है, और असम्भावित घटना है। वास्तव में तो संसार भर में हरेक पर बवंडर और तूफान आते रहते हैं। जल में उस बवंडर को भँवर कहते हैं। धरती पर उसे तूफान कहते हैं; राज्य में उसे क्रान्ति कहते हैं, समाज में उसे नियम हीनता कहते हैं और धर्म के बवंडर को पाप कहते हैं। चाहे भँवर आदि को समरस्ता के नियम का अपवाद कहें, चाहे बवंडर, तात्पर्य एक ही है।

दरिद्र-कुटीर = गरीब की भोंपड़ी। आवर्त्त = भँवर। प्रमाद = पागलपन। द्वन्द्वयुद्ध = दो व्यक्तियों का युद्ध। आह्वान = चुनौती।

पृ० ८८

रण-दुर्मद = युद्ध के नशे में चूर। उत्कटा = तीव्र इच्छा। उद्धत = उग्र। विप्लव = भगड़ा। सामान्य अनुचर = मामूली सेवक। लक्ष्य = ध्यान। परित्याग = छोड़ना। अधम = नीच। बर्बर = जंगली।

पृ० ८९

“दाता

कीजिए।”

शब्दार्थ—सुमिति = सद्बुद्धि। बोधन = समझाने वाला। विवेक = ज्ञान। अंकुरित करना = उगाना।

भावार्थ—हे दाता। आप सबको सद्बुद्धि दीजिए। जिस प्रकार भूमि को जल से सींचकर उसमें बीज उगाए जाते हैं उसी प्रकार आप भी मनुष्य की हृदय रूपी धरती को करुणा से सींचकर सुमिति देने वाले ज्ञान रूपी बीज को उगाइए। जब तक धरती को सींचा नहीं जाता तब तक बीज नहीं उग सकता। उसी प्रकार जब तक हृदय में करुणा नहीं है तब तक ज्ञान का बीज उदित नहीं हो सकता।

उद्विग्न = वेचैन। पूर्ववत् = पहले जैसा। दुष्ट = नीच।

पृ० ९०

“जीवन

अट्टहास हो।”

शब्दार्थ—संघर्ष = लड़ाई। अभियोग = चढ़ाई, आक्रमण। प्रतारण = धोखा। वात्याचक्र = तूफान। सरपट = तेजी से। दृढ़ = निश्चित। कृतघ्न = उपकार

को भुला देने वाला व्यक्ति । उन्मत्त अट्टहास=पागल कहकहा, पागलों की सी जोर की हँसी ।

भावार्थ—जीवक अब तुम आराम करो । जितने भी समाचार तुमने सुनाए उसकी भयंकरता देखकर अब और समाचार सुनने की इच्छा नहीं होती । सुनी हुई बातों से ही यह निश्चित हो जाता है कि संसार भर में लड़ाई भगड़े, हत्या, आक्रमण और धोकेबाजी के जाल हैं । कहीं भी सत्य और सदाचार नहीं हैं । तुम ऐसे ही भीषण घटनाओं के विवरण सुनाओगे । बस अब चुप रह जाओ । तुम भी टण्डी सांस लेकर इस संसार के तूफान से अलग हो जाओ और संसार पर प्रलय काल के भयंकर सूर्य की गर्मी में तपकर गले हुए लोहे की वर्षा होने दो । सारे संसार को भयंकर पीड़ा में डूब जाने दो । किसी को एक दूसरे पर विश्वास न रह जाए । सन्देह की तेज आंधियाँ चलने लगें । धरती के रहने वालों को अन्याय का अधिकाधिक आश्रय लेने दो । जब संसार में न्याय नहीं रहेगा, पापी उन्नति करने लगेंगे और धर्मात्मा कुचले जाने लगेंगे, तब मनुष्य को ईश्वर के न होने का पूर्ण विश्वास हो जाएगा । हर रोज मानव समाज के सामने नई-नई समस्याएँ भयावना रूप धारण करके आएँ । और दुष्ट तथा उपकार को भूल जानने वाला मनुष्य उन्हें सुलभाते-सुलभाते अपनी मूर्खता की धूल को उड़ाकर स्वयं ही अन्धा हो जाए । उसकी विवेक शक्ति दब जाए । और सारा संसार पागल की भाँति जोर से हँसने लगे ।

विशेष—मुसीबतों पर मुसीबतें सहते हुए और संसार भर में अनाचार का प्रसार देखकर स्वभावतः मनुष्य पागल हो जाता है, संसार से भाग जाना चाहता है । इसे ही आलोचक 'पलायन' का नाम देते हैं और जिन रचनाओं में इस प्रकार की प्रवृत्ति होती है उसे पलायनवादी साहित्य कहा जाता है और रचनाकारों को पलायनवादी और जन-भीरु साहित्यकारों की श्रेणियों में रखा जाता है । किन्तु जिस रचना में हमें मानव साहस को त्यागकर पलायन करता हुआ देखा जाता है, वहाँ हमें उस मानव को नियंत्रित करने वाली परिस्थितियों को देखना चाहिए । यदि जीवन में पलायन या प्रतिक्रिया की भावना मिलती है, तो यदि साहित्य में उसका चित्रण हो तो यह कोई पाप नहीं

है क्योंकि जीवन और साहित्य तो चेतना के दो पहलू हैं। हाँ उसके प्रखर होने चाहिए और उनका अधिक प्रसार भी नहीं होना चाहिए।

पृ० ६१

अनुमोदन=समर्थन । लोकहितकर = संसार के हितकारी ।

“कारायण

कारायण ।”

शब्दार्थ—प्रतिहिंसा = बदला लेने की भावना । बर्बरता = भीषणता । वेगवती=तीव्र । उद्रेक = उत्पत्ति । उपकार = हानि । विचलित करना = डिगाना । सौर मंडल=सूर्य मंडल, सूर्य का घेरा । संघर्षपूर्ण=युद्ध से भरे हुए । प्रतिध्वनि=गूँज । चेष्टा = प्रयत्न । मरणासन्न = मृत्यु के समीप, मरने वाला । दुर्वृत्त=दुराचारी । विजय-पताका=जीतने वाली ध्वजा । प्रयाण करना=आगे बढ़ना । अवकाश = समय ।

भावार्थ—कारायण ! तुम क्रोध से भरे हुए हो । तुम्हारा खून बदला लेने के लिए उबल रहा है । तुम में बदला लेने की भयंकर भावना जोर मार रही है । किन्तु तनिक मन को शान्त कर सोचो तो सही कि जिस व्यक्ति के हृदय में संसार भर से स्नेह के कारण करुणा का जन्म हुआ है, क्या वह दूसरों द्वारा की गई अपनी हानियों को याद कर सकता है ? क्या वह दूसरों की करतूतों का बदला लेने के लिए अपने स्वीकृत धर्म को त्याग सकता है ? मैंने करुणा को अपनाया है, मैं संसार भर के साथ स्नेह करती हूँ, तो फिर मेरे लिए प्रसेनजित से बदला लेने का सवाल ही उत्पन्न नहीं होता ।

कारायण :—आप तो देवी हैं । आप इस दृश्य लोकों से विलकुल भिन्न प्रकार के संसार की बातें सोच सकती हैं । किन्तु आप का यह आदर्श संसार कल्पित है । किन्तु हम लोग तो कलह और युद्धों से भरे हुए इस संसार के प्राणी हैं । हमारे लिए आपके संसार की बातें सोचना या उन पर आचरण करना असंभव है । इस संसार में तो रिक्त स्थान से भी व्यक्ति की ध्वनि की गूँज सुनाई देती है । जो विलकुल सारहीन है, शून्य है, उसमें भी प्रतिक्रिया होती है । और फिर हम तो शक्तिशाली पुरुष हैं । फिर हम में बदला लेने की भावना क्यों न हो ? यहाँ यदि हम किसी व्यक्ति को जोर से कंकड़ी मारें तो वह कंकड़ी मारने वाले की ओर लौटने का प्रयत्न करती है । कारायण इन

तकों के द्वारा यह सिद्ध करना चाहता है कि बदला लेने की भावना तो संसार में स्वभावतः और सर्वत्र पाई जाती है। वह कहता है कि इसीलिए मेरा तो यह विश्वास है कि मरते हुए, अभिमानी और दुराचारी कोशल के राजा प्रसेनजित् की रक्षा आपको नहीं करनी चाहिए। उसे मार देना ही उचित है।

मल्लिका :—मैं स्वयं यह भली भाँति जानती हूँ कि मेरा कर्त्तव्य क्या है। हमने तो यह पक्का निश्चय किया है कि हम सदैव विजयी रहने वाली करुण की पताका के अधीन होकर आगे बढ़ेंगे, सदैव करुणा को ही अपने जीवन का सर्वस्व समझकर आचरण करेंगे। अब मैं अपने निश्चय से एक कदम भी पीछे नहीं हट सकती हूँ। करुणा को त्यागकर प्रतिहिंसा की निकृष्ट भावना में बँध जाना असम्भव है। जिस प्रकार साहसी सिपाही अपने देश का झंडा लेकर आगे समरभूमि में आगे बढ़ता ही जाता है उसी प्रकार मैं भी करुणा का झंडा हाथ में लिए जीवन के क्षेत्र में बढ़ती जाऊँगी और उसी सैनिक के समान झंडे की लाज बचाने के लिए अपना जीवन भी बलिदान कर दूँगी।

पृ० ६२

दुर्दशा=बुरी हालत। लघु-सत्य=छोटा सा सत्य, साधारण कर्त्तव्य। असह्य=जो सहने योग्य नहीं। दुराचारी=पापी। भागिनेय=बहिन का बेटा, भानजा। अभिवादन=प्रणाम।

पृ० ६३

विपद=मुसीबत। दिव्य=दैवी। मर्यादा=नियम। प्रतिकृति=मूर्ति, दूसरा रूप। कुकर्म=बुरा कर्म। प्रायश्चित्त=पाप-कर्म करने के पश्चात् उसके बुरे प्रभाव से बचने के लिए जो कर्त्तव्य किया जाता है उसे प्रायश्चित्त कहते हैं। ज्वाला=पीड़ा। अभिशाप=शाप। नरक की ज्वाला=भयंकर व्यथा।

“अतीत

अभ्यास कीजिए।”

शब्दार्थ—अतीत=भूतकाल, बीता हुआ समय। वज्र-कठोर=वज्र के समान कठोर-पत्थर आदि कठोर पदार्थ पर खिंची हुई रेखाएँ मिट नहीं सकती। कुटिल=क्रूर, पाप भरे। रमणीय=आकर्षक। उज्ज्वल=स्वच्छ,

कांतिमान ।

भावार्थ—बीते हुए काल के वज्र के समान कठोर हृदय पर जो पाप भरे रेखाओं के चित्र बन गए हैं वे तो कभी मिट नहीं सकते । पत्थर पर खिंची हुई लकीर मिट नहीं सकती और वज्र तो पत्थर से भी कहीं अधिक कठोर होता है । मनुष्य से एक बार जो पाप कर्म हो जाता है, वह हमेशा के लिए उनके चरित्र में जुड़ जाता है । हाँ भविष्य को सुधारा जा सकता है । यदि आप अपने को पवित्र एवं उन्नत करना चाहते हैं, तो वर्तमान समय में कुछ मधुर और सुन्दर चित्र खींचिए ; कुछ शुभ कर्म कीजिए, जो आगे चलकर प्रसिद्ध हों और जिनका विवरण सुनकर देखने वालों के मन को शान्ति प्राप्त हो । अच्छे कर्म करने पर भी आपके किए हुए बुरे कर्म मिट नहीं जाएँगे । वे तो आपकी जीवनी के अभिन्न अङ्ग बन ही गए हैं । हाँ शुभ आचरण द्वारा आपका आने वाला जीवन सुखी एवं सुखद हो सकता है । दूसरों के सुख में स्वयं भी सुखी रहने का प्रयत्न कीजिए । दूसरों को विपत्ति में फँसाकर स्वार्थ-साधना का प्रयत्न नीचता का परिचायक है ।

“अधीर

जाल में ।”

शब्दार्थ—विलोल=चंचल । कीचि-मय=लहरों से युक्त । कराल=भयंकर, अत्यंत तीव्र । क्षणिक = एक क्षण के लिए ।

भावार्थ—हे मेरे मन ! तू संसार रूपी मोह जाल में फँसकर उद्विग्न मत हो । यह संसार तो व्यथा रूपी चंचल लहरों से भरा हुआ समुद्र है । जिस प्रकार तरंगित सागर में गिरकर कोई व्यक्ति बच नहीं सकता उसी प्रकार व्यथा भरे संसार में अनुरक्त होकर कोई भी व्यक्ति बच नहीं सकता । और इस संसार रूपी समुद्र में दुख का भँवर भयंकर चाल में चल रहा है ! यह भँवर भी पल भर का है और उसे कहीं भी स्थिरता नहीं है । संसार के दुख भी क्षणिक हैं । सुख दुख तथा अन्य सभी दृश्य उस अनन्त सत्ता में विलीन हो जाएँगे जो इन सबका आधार है ।

पृ० ६४

कन्दुक=गेंद-प्रसेनजित क्रोध में भरे हुए अजात की ठोकरी से लुढ़कने वाली गेंद है । क्रूरता=भयंकरता । विकृत=कुरूप । गुप्तचर=जासूस । शुभ्रूषा=

सेवा । उष्ण=गर्म । हिम-जल=बर्फ का पानी, शीतलता । यशार्जन=यश की प्राप्ति । लिप्सा = इच्छा । हस्तगत=प्राप्त ।

पृ० ६५

मृत्पिंड=मिट्टी के शरीर । अधम=नीच । समवेदना=सहानुभूति । आक्रमण=हमला । दुर्बल=कमजोर ।

पृ० ६६

उपवन=बगीचा । मद्यपान=शराब पीना । रूप-रस = सौन्दर्य का आनंद । तृप्ति=सन्तोष । हिंस्र=जंगली । तृष्णा=प्यास ।

“निर्जन

आँसू-हार ।”

शब्दार्थ—निर्जन=जहाँ कोई व्यक्ति न हो, एकान्त । गोधूली=संध्या का समय जब गौएँ चरकर वापिस घरों को जाती हैं और उनके चलने से आकाश भर में धूल छा जाती है । प्रान्तर=भाग, । पर्णकुटी=पत्तों की बनी हुई कुटिया । किए प्रतीक्षा पर अधिकार = बहुत देर से इन्तजार कर रहे थे किंतु फिर भी विचलित न हुए थे । बटमार = डाकू । अलस=अलसाई हुई । अकम्पित=स्थिर । यवनिका = नाटक का पर्दा । अन्तस्तल = हृदय, हृदय के भाव । अभिनय = प्रदर्शन । श्रम-सीकर=मेहनत की बूँदें, पसीने की बूँदें । विपुल = विशाल । चिनगारी श्वासों में उडती=मेरी सांसों में चिनगारी के समान गर्मी है । निर्जन=एकान्त । विश्राम सँभल जाएगा = आराम आ जाएगा । सहज व्यथा=स्वाभाविक पीड़ा, वह पीड़ा जो मेरे जीवन में भरी हुई है । छिन्न=टूटे । विपंची=वीणा । क्षपा-सदृश=रात के समान आँसू-हार= आँसुओं की झड़ी, ओस की बूँदें ।

भावार्थ—तुम किसी एकान्त स्थान में संध्या के समय अपनी कुटिया के दरवाजे खोले हुए लम्बी इन्तजार की उद्विग्नता को वश में किए हुए बैठे थे । (साधारणतः मनुष्य इन्तजार करता-करता ऊब जाता है किन्तु तुम देर तक इन्तजार करके भी शान्त थे ।) जब तुम अलसाए हुए किन्तु स्थिर नेत्रों से डाकुओं के द्वारा लूटे गए, लाखों व्यक्तियों द्वारा ठुकराए हुए किसी मुसाफिर की राह देख रहे थे ; और जब तुम्हारी पलकें नाटक के पर्दे के समान झुकी

हुई थी और तुम्हारे हृदय के भीतर विभिन्न विचारों का अभिनय हो रहा था—अनेक विचार आ-जा रहे थे, तभी मैं तुम्हारे पास आई थी। मैंने अपने मुख से अपना परिचय नहीं दिया था वरन् परिश्रम के पसीने की बूँदों ने और दुख के आँसुओं ने ही तुम्हें मेरा परिचय दिया। उन्होंने ही यह बता दिया कि मैं दुखों से पीड़ित और थकी हुई एक अबला हूँ। किन्तु फिर भी अब तुम मेरा परिचय पूछ रहे हो। इतना विशाल संसार है, भला मैं किसको क्या परिचय दूँ। परिचय में व्यक्ति अपने सम्बन्धियों का नाम बताता है। किन्तु मेरा तो इस सारे संसार में कोई भी नहीं है। मैं किसका नाम लेकर तुम्हें अपना परिचय दूँ। दुखों से मेरा हृदय जल रहा है और मेरी साँसों में चिन-गारियों की गर्मी है। तनिक रुक जाओ ! मैं थोड़ा आराम तो कर लूँ ; अपने दुखों और ज्वाला को वश में तो कर लूँ। एक क्षणभर के लिये इस शीतल स्थान को शान्त रहने दो, हम और तुम दोनों बिल्कुल बेसुध हो जाएँ। और जब मेरे जीवन की व्यथा सो जाएगी तो मुझे विश्राम मिलेगा। व्यथा के सोने से तात्पर्य है अपने मदहोश होकर सोने में। जब रात्रि का समय बीत जाएगा—जब रात्रि का घना अन्धकार प्रातःकाल होने पर हल्का होकर नीला हो जाएगा तो रात बीत जाएगी और केवल ओस की बूँदें ही रात का परिचय देंगी। इसी प्रकार जब जीवन की वीणा टूट जाएगी, हम प्यार के आवेग को भूल जाएँगे तो हम भी रात के समान ही विलीन हो जाएँगे और केवल बची हुई दर्द भरी कथाएँ ही हमारा परिचय देंगी।

विशेष—श्यामा के लिए शैलेन्द्र उसकी प्रतीक्षा में बैठा हुआ युवक था। किन्तु उस समय स्वयं श्यामा कई डाकुओं द्वारा लूटी जा चुकी थी ; क्योंकि वह वेश्या रह चुकी थी, और समाज के व्यक्तियों द्वारा ठुकराई गई थी। इसीलिए उसके जीवन में पीड़ा की ज्वाला और आँखों में दर्द के आँसू थे। इस गीत में श्यामा अपने हृदय को खोलती है।

पृ० ६७

अभिभूत करना=हरा देना, दबा देना। संकीर्ण=छोटे, बंधे हुए। प्रकाश्य=प्रत्यक्ष। पामरी=दुष्टा। भावी कार्य=भविष्य के प्रयत्न। विघ्न स्वरूप=बाधा के समान। गर्त=खाई। पेय=पीने का पदार्थ, यहाँ शराब। हलाहल=जहर।

पृ० ६८

अर्द्ध-निमीलित=आधे बन्द ।

“अमृत

जपने ।”

शब्दार्थ—छुक चुके हैं=भर चुके हैं, मस्त हो चुके हैं । विकल=व्याकुल ।
विस्मृत=भूला हुआ ।

भावार्थ—यदि तुम अपने हाथ से मुझे जहर भी पिला दो तो वह मेरे लिए अमृत हो जाएगा । मेरी आँखें तो अब नशे में चूर हो चुकी हैं और चेतना भी शिथिल होने लगी है । इस सौन्दर्य के संसार में रहते-रहते मेरी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठी हैं, संसार भूल गया है और मेरा पुलकित हृदय केवल तुम्हारा ही नाम रटने लगा है ।

बिछली=बहकी । प्रतिशोध=बदला । दावाग्नि=जंगल की आग, यह बड़ी तेजी के साथ सारे जंगल में फैल जाती है और उसे भस्मसात कर देती है ।
तृण-कुसुम=तिनके और फूल ।

पृ० ६९

क्रन्दन=चिल्लाना । शिथिल=बेहोश । संज्ञा=चेतना । मलिन=बुरे ।

“किन्तु

होता है ।”

शब्दार्थ—सत्य-सूर्य=सच्चाई का सूरज । क्षणिक प्रवाह=नाश की धारा ।
अकार्य=अकर्म, बुरा कर्म । दुर्गति=बुरी दशा । पराकाष्ठा=अन्तिम सीमा । अप-
कार = बुरा कर्म । कलुषित=गामी ।

भावार्थ—किन्तु क्या देवदत्त सच्चाई के सूरज को छलनी से ढक सकता है ? जिस प्रकार छलनी से सूरज नहीं ढका जा सकता उसी प्रकार पाखण्डपूर्ण व्यवहार से सच्चाई छिप नहीं सकती । चिञ्चा का उदाहरण लो । उसने मुझे अपमानित करना चाहा । किन्तु अब यह बात सब जान गए हैं कि उसे गर्भ नहीं है और उसने केवल मुझे कलंकित करने के लिए ही भूटा प्रचार किया था । और तुमने यह भी देख लिया है कि उसकी कितनी बुरी हालत हुई है । हमेशा पवित्र बुद्धि के आदेश के अनुसार कर्तव्य करते रहना चाहिए । दूसरों की उपेक्षा करना उनके साथ सबसे बड़ी दुश्मनी करना है । वह तो स्वयं भी अपने बुरे कर्मों का फल भोगेगा । आनन्द ! यदि दूसरों के बुरे कर्मों का भी

ध्यान किया जाए तो मन अपवित्र हो जाता है ।

काण्ड संघटित हुआ है=कोई भयंकर घटना हुई है ।

पृ० १००

प्रतिद्वन्द्वी=शत्रु । मृतक = मरी हुई । आदेश = आज्ञा । बिलम्ब = देर ।
अपवाद=कलंक । द्रव्य=धन । संघाराम=बौद्ध बिहार । मृत=मरी हुई । समग्र
=सारा ।

पृ० १०१

सन्तुष्ट=प्रसन्न । मातुल=मामा । ज्वाला घघक रही है=क्रोध की आग जल
रही है । सेना-संगठन=सेना की तैयारी । उद्योग=प्रयत्न । स्तब्ध=चुप ।

पृ० १०३

सहचर=साथी । क्वाथ=औषधियों को पानी में उबाल कर गाढ़ा किया
हुआ रस, काढ़ा । पुटपाक=वह क्रिया जिसमें औषधि को बन्द मुँह के पात्र
में उबालकर भस्म आदि बनाई जाती है । परिहास=मजाक । आदर्श=शीशा ।

पृ० १०४

तत्काल=उसी समय । यथार्थ है=सत्य है । इतिश्री=समाप्ति । ठीका=ठेका
अनिष्ट=नुकसान । आयोजन=प्रबन्ध ।

पृ० १०५

ध्रुव=निश्चित । प्रस्तुत=तैयार । मन्त्रणा=सलाह ।

पृ० १०६

प्रकोष्ठ=कमरा । अकर्मण्यता = आलस्य । मोदक=लड्डू ।

“माँ भोषण होता है ।”

शब्दार्थ—महत्वमय = महान, गौरवपूर्ण । षडयन्त्रकारी = कुचक्री, धोके
बाज । पाशववृत्ति=पशुओं का भाव, नीच भावनाएं । उत्तेजना = शक्ति ।
भीषण=भयंकर ।

भावार्थ—माँ ! मुझे चमा करो, अब मैं युद्ध करने नहीं जाऊंगा क्योंकि
युद्ध में बड़ी भीषणता होती है । अनेक स्त्रियों के पति मारे जाते हैं और वे
बे सहारा हो जाती हैं । पता नहीं किस कुचक्री के मस्तिष्क ने सर्व प्रथम
सैनिक के जीवन को महान बताया है । पता नहीं किसने युद्ध में भयंकरता

दिखाने वाले व्यक्तियों की प्रशंसा के गीत गाए हैं । सभ्यता के अनुरोध से मानव-समाज की जो नीच भावनाएं दबी रहती हैं, युद्ध के अवसर पर वही जाग उठती हैं । सभ्यता का ध्यान नहीं रह जाता और मनुष्य जंगली जानवरों का सा व्यवहार करने लगता है । रणक्षेत्र में बड़ा भयावना दृश्य होता है ।

विशेष—इन पंक्तियों में दो बातें देखी जा सकती हैं । प्रथम, लेखक युद्धों की भीषणता दिखाकर मानव-समाज को हमेशा के लिए उसके दोषों से मुक्त करना चाहता है । द्वितीय, कुछ आलोचकों का यह मत भी हो सकता है कि अज्ञातशत्रु डरपोक है जो युद्ध को देखकर घबड़ा गया है । पर द्वितीय भावना अनुचित है क्योंकि लेखक और सामाजिक अज्ञात के साथ हैं ।

पृ० १०७

सम्राट=राजा । निर्बोध=मूर्ख । विलासी = भोग में डूबा हुआ । पौरुष = प्रयत्न । वीरसूती=वीर को जन्म देने वाली । धनञ्जय=अर्जुन । साहसिक = डाकू ।

पृ० १०८

वाहिनी=सेना । लुब्ध=तरंगित । खड्ग=तलवार । पदच्युत = अपने युवराज पद से हटाया हुआ । धर्म-सम्मत=धर्म के अनुकूल । आजीविका=रोजी । रणवाद्य=युद्ध के बाजे ।

पृ० १०९

धूर्त=दुष्ट । प्रबंचना=धोखा । परिव्राजक=सन्यासी । राजलिप्सा=राज करने की इच्छा । दोषारोपण=दोष लगाना । कुशिक्षा=बुरी शिक्षा । नरपिशाच = नर के रूप में राक्षस । प्रतिहारी = द्वारपाल ।

पृ० ११०

हंगित=इशारा । कूट-चातुरी=धोकेबाजी । अनिच्छा-पूर्वक=इच्छा न रखते हुए भी ।

पृ० १११

विवाद=झगड़ा । परिणीता=ब्याही हुई । अनिष्टचिन्तन=बुरा सोचना । मार्चनीय = क्षम्य, क्षमा के योग्य । प्रहरी=पहरेदार । निसर्ग=प्रकृति, स्वभाव ।

सञ्चित=इकट्ठा । उद्गम=आरम्भ ।

पृ० ११३

बन्दीगृह=जेलखाना ।

“क्या विप्लव

बन्द कर लूँगी ।”

शब्दार्थ—विप्लव=क्रान्ति । विद्रोह=युद्ध । प्रयास=प्रयत्न । स्वार्थ=साधन=अपने हित के लिए प्रयत्न । सहज-प्राप्य=आसानी से प्राप्त होने वाला । शस्त्र-कला=हथियार चलाने की कुशलता । बर्बर-रक्त=जंगली रक्त, जंगली मनुष्यों का रक्त । उष्णता=गर्मी, उत्तेजना । सौहार्द्र=मित्रता, प्रेम । निर्भीकता=निडरता । विशाल-भाल=ऊँचा माथा । अन्तःकरण=हृदय, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार चारों को अंतःकरण कहते हैं यहाँ हृदय । स्फूर्ति=उत्साह, शक्ति । स्पृहणीय=वाञ्छनीय, आकर्षक । सार्थकता=सफलता । वृत्तियों=भावों । छाया-पूर्ण=शीतल, छाया शीतल होती है । आविर्भाव = प्रकट होना । तिरोभाव = छिपना ।

भावार्थ—यह क्यों इतनी क्रान्ति और उपद्रव हो रहा है ? मनुष्य प्रकृति के विरुद्ध प्रयत्न करके नई शक्तियाँ प्राप्त करने के लिए कितना प्रयत्न करता है । दूसरों को कुचलकर शक्ति प्राप्त करने के लिए बहुत प्रयत्न किया जा रहा है । समाज लड़ाई-भगड़े और स्वार्थ की सिद्धि में इतना फंस गया है कि आसानी से प्राप्त होने वाला जो आत्मा का सुख है वह भी उससे छिन जाता है । सदैव वह व्यग्र और लुब्ध रहता है ! भाई-भाई अपने स्वार्थ के लिए प्रेम को भुला देते हैं और आपस में लड़ा करते हैं, पुत्र पिता का आदर नहीं करते वरन उसके विरुद्ध तलवार उठाते हैं, और स्त्रियाँ पति-सेवा के पवित्र धर्म को त्यागकर पति पर हकूमत चलाना चाहती हैं । मनुष्य को मारने के लिए हथियार चलाने की योग्यता मनुष्य की बड़ी भारी विशेषता समझी जाती है । और युद्धों की कहानियों को लेकर कवि लोग कविता करते हैं । कविता के द्वारा जंगली पशुओं के समान राजाओं के रक्त को और भी उत्तेजित करते हैं, उन्हें युद्ध करने के लिए प्रेरित करते हैं । जिस व्यक्ति को हम प्रेम से निमन्त्रित कर सकते थे, उसका सत्कार कर सकते थे उसे ही आज कैदी बनाकर रखा हुआ है । सुन्दर राजकुमार अजातशत्रु ! उसके चौड़े माथे पर

कितनी सरलता और निडरता छिपी हुई है। उसके दर्शन करके तो मेरा जीवन सफल हो गया है। यदि किसी को देखकर इस प्रकार मुग्ध हो जाना ही प्रेम कहलाता है तो सचमुच वह बहुत आकर्षक है। प्रेम करने में ही जीवन की सफलता है। अब मुझे उस राजकुमार से कितनी सहानुभूति होगई है और मुझे अपने मन में कोमलता की कैसी रसीली अनुभूति हो रही है। किसी दिन मैं पिता जी के चरण पकड़कर उनसे विनय करूंगी कि इस राज कुमार को छोड़ दें। मैं तो किसी देश की रानी बनने के बजाय इस प्रेम की अधीनता में रहकर अधिक प्रसन्न रहूंगी। मैं अपने शीतल हृदय में उठती और छिपती हुई कोमल तथा मधुर भावनाओं के आनन्द में मग्न रहूंगी और अपनी आँख बन्द कर लूंगी।

पृ० ११४

“हमारा

वाण ।”

शब्दार्थ—उल्लास=प्रसन्नता, हर्ष। जीवन-धन=जीवन का सर्वस्व, प्रियतम। रोष=क्रोध। करुणा के दो बूंद=दर्द के दो आँसू। दृष्टि को—कान्ति = जब जब प्रकाश बहुत तीव्र होता है तो उस पर आँखें नहीं ठहर सकती, इसलिए वाजिरा प्रियतम के प्रार्थना करती है कि तुम अपनी शोभा को इतना तेजोमय मत कर दो कि उस पर आँखें ठहर ही न सकें। निष्ठुरता=कठोरता। चपल=चंचल।

भावार्थ—हमारे जीवन का हर्ष, हमारे प्रियतम का क्रोध और हमारे दर्द के आँसू जब सब मिल जाएंगे, तो सन्तोष हो जाएगा। मेरे और प्रियतम के मिलन में हर्ष है। तुम अपनी शोभा को इतना तेजोमय मत बना दो कि उस पर नजर ही न टिके। एक पल भर के लिए अपने सौन्दर्य को निरख कर सन्तुष्ट हो लेने दो। और यदि अपनी शोभा को देखने नहीं देना चाहते तो अपनी इस कठोरता का अन्त कर दो और अपने चंचल नेत्रों के वाण से हमें बेसुध कर दो।

श्यामा रजनी=काली राज। करुणा की मूर्ति=स्नेह की प्रतिमा। अप्रकट इच्छा=छिपी हुई इच्छा। कौशल=सुन्दर कार्य। धृणा=नफरत। व्यथित = दुखी। नीरव = शान्त, छिपी हुई। करुणा = प्रेमभरी। कृतज्ञता=भद्रा।

अभिनय=नाटक ।

पृ० ११५

द्रोह = शत्रुता । पराजित=हरा देना । विजित=हारा हुआ । वक्ष=छाती । वहन=धारण । उपकार = भलाई । प्रतिफल=बदला । भर्त्सना=डॉट-फटकार । चिर बन्दी = हमेशा का कैदी । हृदय की दुर्बलता या प्रेम की सबलता=प्रेम को यदि हृदय की कमजोरी कहा जाए तो मेरे हृदय की कमजोरी मुझे दुखी बना देगी और यदि प्रेम को शक्ति कहा जाए तो उसकी गम्भीरता भी मुझे चैन न लेने देगी । अयोग्य=नाकाबिल । सर्वस्व=सब कुछ । समर्पण करना= भेंट करना ।

पृ० ११६

अभिन्न=एक । प्रेम-पाश = प्रेम का जाल । सहसा = अचानक । बाध्य = मजबूर । समक्ष=सामने । प्रतिद्वन्द्विता=शत्रुता । प्रतिहिंसा=बदला लेने की भावना । द्वन्द्व-युद्ध=दो व्यक्तियों का युद्ध । आह्वान करना=चुनौती देना । प्रतिष्ठा = सम्मान ।

पृ० ११७

राजनन्दिनी=राजा की पुत्री, राजकुमारी । आत्म-समर्पण=अपने आप को हवाले कर देना । विमाता=सौतेली माता । जननी की शीतलता = माँ का प्यार । वत्स=पुत्र । विषैली=जहरीली, शत्रुता से भरी ।

पृ० ११८

कानन=वन । प्रान्त=भाग ।

“आर्द्र”

आह ।”

शब्दार्थ :—आर्द्र=द्रवित, वियोग से पिघला हुआ । कादम्बिनी=घटा । उन्मत्त=पागल । उन्मत्त आलिंगन=पागल कर देने वाला स्पर्श (विशेषण-विपर्यय) । तरराजि=वृद्धों की माला । सिहर उठती है=कम्पित हो जाती है । भुलसी हुई कामनाएं = दबी हुई इच्छाएँ । अंकुरित होना=उदित होना, उठना । जलदागमन = मेघों का आना ।

भावार्थ :—जिस प्रकार वियोग में पिघले हुए हृदय में दर्दली कल्पनाएँ उठती हैं उसी प्रकार आकाश में घटा धिरती हुई आरही हैं । पागल बना देने

वाले शीतल पवन के स्पर्श से वृक्षों का समूह कांपने लगता है । प्रकृति के इस सुरम्य वातावरण के प्रभाव से दबी हुई इच्छाएं मन में जागने लगी हैं । प्रिय की याद आने लगी है । किन्तु क्यों ये इच्छाएं मन में उठ रही हैं ? विरुद्धक स्वयं ही उत्तर देता है कि इसका कारण है मेघी का घिरना । यहाँ प्रकृति का उद्दीपक प्रभाव प्रदर्शित है ।

“अलका

स्मृति से ?”

शब्दार्थ :—अलका=यक्षों की नगरी का नाम । विकल=व्याकुल, दुखी । विरहिणी = वियोगिनी । अवलम्ब=सहारा । नीरद=बादल । निकुरम्ब=समूह । सरसिज कानन=कमलों का वन । सरसिज कानन का संकोच = कमलों के वन को संपुटित करने वाले—सूर्य के छिप जाने पर कमल संपुटित हो जाते हैं । जलद=बादल । ज्वाला=बिजली । निष्ठुर = निर्दय । हृत्तल=हृदय । चपला=बिजली । व्याकुलता=चंचलता । करुण-विलाप=दर्द-भरा क्रन्दन । मानस=मानसरोवर । बडवानल=समुद्र में लगने वाली आग । प्रणय-प्रभाकर=प्रेम का सूर्य—बादलों के घिरने पर प्रेम-भावनाएँ कूक उठती हैं । अनन्त=आकाश । आलोक=प्रकाश । प्रवासी=विदेश को गये हुये । मन्थर = धीरे । प्रणय-पिपासा=दाम्पत्य प्रेम की प्यास ।

भावार्थ—हे मेघों के समूह ! तुम अलकापुरी की किस व्यथित वियोगिनी की पलकों का सहारा लेकर इतने दिनों तक सुख पूर्वक सो रहे थे ? वर्षा ऋतु बहुत काल पश्चात् आई है । इससे पूर्व संभवतः मेघ राशि सो रही थी । हे कमल वन को संपुटित करने वाले ! तुम आज क्यों सहसा बरसने लगे हो ? इतने में ही बिजली चमकती है । इस पर विरुद्धक कहता है कि तुम तो जल से भरे हुए हो फिर भी तुम्हारे भीतर आग छिपी है । तो जल आग को बुझा देता है और चारों ओर से घटाएँ झुककर आगई हैं । विरुद्धक कहता है कि तुम क्यों झुके हुए हो और तुम्हें किस बात की चिन्ता है । चिन्तातुर मनुष्य अपना सर झुकाए हुए सोचा करता है । स्पष्टतः यहाँ विरुद्धक बाह्य दृश्यों को अपने हृदय के रंग में रंग कर देखता है । उसके हृदय में भी आग है और वह भी चिन्तातुर है । अब तक तुम किस कठोर एवं शीतल हृदय में बर्फ के समान जमे रहे थे ? और हे विश्व के लिये करुणा से भरे हुए बादल ! तुम

अब किस गर्मी से पिघल कर बरस रहे हो ? मेघों के सफेद टुकड़े बर्फ के समान जमे हुए दिखाई देते हैं । बर्फ गर्मी पाकर पानी के रूप में गल जाती है । बर्फ के समान बादल भी बरस रहे हैं । तो इन्हें किस ताप ने गलाया है ? तुम्हारे भीतर बिजली की आतुरता है । तभी तो बिजली बार-बार चमक उठती है, इससे उसकी व्याकुलता प्रकट होती है । तुम्हारे लिए ही चातक दर्द भरी पुकार सुनाता है । आकाश के तारा रूपी आँसुओं को पोंछकर तुम स्वयं किस व्याकुलता में रो पड़ते हो ? कोई सहृदय व्यक्ति रोते हुए व्यक्ति को धीरे बँधाये और उसके आँसू पोंछ दे पर यदि वह स्वयं रोने लगे तो स्वभावतः यह जिज्ञासा होगी कि वह स्वयं किस दुख में रो रहा है । किस मानसरोवर के भीतर की आग नहीं बुझी थी जिससे तुम भाप बनकर और प्रेम के सूर्य के रूप में सारे आकाश पर छा जाते हो ? प्रसिद्ध है कि अग्नि के ताप से भाप बन कर ही बादलों का निर्माण होता है । जुगनू का दीपक क्यों जल रहा है, मार्ग में फूल और प्रकाश क्यों बिखरा हुआ है ? किस की समाधि पर आँसू बरस रहे हैं और किसके वियोग में यह शीतल शोक सर्वत्र व्याप्त हो रहा है ? समाधि पर दीपक जला करता है और उस पर पुष्प भी पड़े रहते हैं । उस पर मृत व्यक्ति के सम्बन्धी जाकर रोते हैं । विरुद्ध को बादल भी किसी की समाधि पर रोते दिखाई देते हैं । 'शीतल शोक' इसलिए कहा कि वातावरण तो शीतल है किन्तु दृश्य समाधि पर आँसू बरसाने का है । तुम थके हुये और विदेश गए हुये बनजारों के समान ही धीरे-धीरे लौट रहे हो । तुम में बिजली चमक रही है । ऐसा प्रतीत होता है कि बिजली का चमकना ही किसी बीती हुई प्रेम कहानी की स्मृति है । जिससे प्रेम की प्यास जाग उठती है ।

विशेष—बादलों को आते हुए देख कर विरुद्ध के हृदय की प्रेम की प्यास जाग उठती है । उसके दिल में ज्वाला की टीस सी होती है । वह अपने भावों को बादल पर आरोपित करता है । अन्तिम पंक्ति में विरुद्ध की वर्तमान दशा का भी उद्घाटन है । वह भी बनजारों के समान ही इधर उधर चोरी डकैत करता हुआ भटकता रह रहा है । अब वह भी थक कर वापिस आ रहा है ।

पृ० ११६

उन्मृण = मुक्त । विदित था = मालूम था । निर्मूल = निराधार । विचलित = चंचल । अतीत = प्राचीन काल । कृतश = अहसानमन्द । कलंकी = पाप भरा । उत्तीर्ण = सफल, पास । रक्त-कलुषित = दूसरों के खून से रंगे होने के कारण दूषित । निरीह = असहाय । विश्वासघात = किसी का विश्वास तोड़ना, धोकेबाजी ।

पृ० १२०

विरक्ता = उदासीन, जो सांसारिकता से मुक्त हो गई है । बलात्कार = बल पूर्वक इज्जत लूटना । लम्पटता = कामुकता । अभिनय = प्रदर्शन । कुकर्मों = बुरे कर्मों । अभियोग = लाञ्छन । क्रूर = भयंकर । आचरण = व्यवहार । जुद्ध = नीच ।

पृ० १२१

प्रतिदान = बदला । अभीष्ट = इच्छित । भ्रम-पूर्ण = अविद्या से भरा हुआ । अधम = नीच ।

पृ० १२२

“स्वर्ग है

इस ओर ।”

शब्दार्थ :— ठौर = आश्रय । सुधा-सलिल = अमृत, शुद्ध विचार । पूरित = भरा हुआ । प्रेम-विभोर = प्रेम में मस्त । कुसुमय = फूलों से लदा हुआ । कल्प-द्रुम = कल्पवृक्ष-देवताओं का वृक्ष जो सभी इच्छाएं पूर्ण करता है ।

भावार्थ :— विश्वप्रेम से भरा हुआ सज्जनों का हृदय ही मनुष्यों का एकमात्र सहारा है । सन्तों के अतिरिक्त दूसरा कोई भी स्वर्ग नहीं है । जो हृदय अमृत के समान शुद्ध विचारों से भरा हुआ है और प्राणिमात्र के स्नेह में अनुरक्त है, वहीं फूलों से लदे हुये कल्पवृक्ष की छाया के समान शीतलता और सुख है ।

पृ० १२३

सपत्नीक = सौत की । धर्मध्वज = धर्म की ध्वजा, महान धार्मिक । मातुल = मामा । वध किया = हत्या की ।

पृ० १२४

अन्तःकरण = दिल । अस्तित्व = सत्ता । जन्म-सिद्ध = जन्म से ही प्राप्त ।

पदच्युत = पद से हटाना ।

स्त्रियों के

प्रयास करती हैं ।”

शब्दार्थ :—संगठन=वनावट । परिवर्तन=भेद । समस्त = सारे । एकधि-
पत्य=पूर्ण अधिकार । दुरभिसन्धि=कुटिल नीति = छल । शिथिल, निर्बल ।
उच्छृंखलता=नियमहीनता । आश्रय देना=जन्म देना । अवहेलना=अपमान ।
निर्मूल शंका=निराधार सन्देह । कुटिलता=दुष्टता । पददलित=पांव से कुच-
लना, दबाना । प्रव्रज्या=सन्यास । सुकुमार=कोमल । प्रयास=प्रयत्न ।

भावार्थ :—स्त्रियों के शरीर की बनावट और उनके प्राकृतिक विकास
में ही पुरुषों से एक भेद है जिससे यह साफ जाहिर होता है कि वे केवल
अपने हृदय पर ही शासन कर सकती हैं । अपने हृदय को जिधर चाहें लगा
सकती हैं । यदि कोई स्त्री सदाचार का व्रत ले ले तो जी ज्ञान से उसे पूर्ण
करने का प्रयत्न करती है । यदि कोई स्त्री कुटिलता का व्रत ले ले तो फिर उसे
कभी भी नहीं त्यागती । जो उसके मन में आता है वही करती है । वे उन
मनुष्यों पर भी अधिकार जमा सकती हैं जिन्होंने सारे संसार को जीत रखा है ।
मनुष्य संसार भर को जीत सकता है किन्तु नारी के सामने वह भी परास्त हो
जाता है । वे पुरुष पर रानी के समान पूर्ण अधिकार रख सकती हैं । और
उससे अपनी इच्छाएँ पूरी करवा सकती हैं । फिर उसे छल करने और जाल
रचने की क्या आवश्यकता है । जो कार्य प्रेम से हो सकता है उसे धोके से
करने का क्यों प्रयत्न किया जाए ? और इस प्रकार छल का सहारा लेकर
स्त्रियाँ सदाचार और शांति को ही निर्बल नहीं करतीं, वरन् समाज में भी
अनैतिकता और नियम हीनता फैलाती हैं । इसलिये स्त्री को अपने स्वाभा-
विक दिव्य गुणों का आश्रय लेकर ही कार्य करने-करवाने चाहिये ।

शक्तिमती—किन्तु पुरुष बार-बार हमारा अपमान क्यों करता है । वह
बहाने बनकर क्यों हमें खवार रखना चाहता है ? वह क्यों हमें हमारी कम-
जोरियाँ दिखा कर हमें हमेशा निराधार सन्देहों और बुरी भावनाओं में उल-
भाता है ? जब पुरुष हमें दुर्बल बनाता है तब स्वभावतः हमारे मन में उसके
प्रति असन्तोष और क्षोभ उत्पन्न होता है । आखिर हम किस बात में पुरुष से
कम हैं ? क्या यदि हम प्रयत्न करें तो पुरुष के समान अधिकारों को प्राप्त

नहीं कर सकती ! क्या पुरुषों ने जानबूझ कर हमारी आजादी को नहीं छीना है ? वह हमें हमेशा अपनी दासी बनाए रखना चाहता है । गौतम ने स्त्रियों को भी सन्यास ग्रहण करने की आज्ञा दे दी है । तो क्या वे भी पुरुष के समान ही इस कठोर व्रत को अपने कोमल शरीर द्वारा पालने का प्रयत्न नहीं करती ?

“किन्तु

कह सकता है ।”

शब्दार्थ :—साम्य=समानता । आक्षेप=दोषारोपण । वृत्तियों=भावनाओं । बवंडर=तूफान । आलोक=प्रकाश । जीवन-संग्राम=जिन्दगी की लड़ाई । यथा-शक्ति=अपनी शक्ति के अनुसार । परम ध्येय=सब से बड़ा लक्ष्य । सान्त्वना=धीरज । अभय-वरद हस्त = अभय का बरदान देने वाला हाथ । वृत्तियों की कुंजी=सारी भावनाओं का मूल । प्रकृति स्वरूप=प्रकृति से रूप वाली,—सांख्य मत के अनुसार प्रकृति ही पुरुष को आकृष्ट कर सृजन का आरंभ करती है । असमर्थता=कमजोरी । विस्तृत=बड़ी । संकीर्ण=संकुचित । विश्लेषण=व्याख्या । क्रूरता=भयंकरता । अन्तर्जगत=हृदय । आवरण=पर्दा । अनुकरणीय = अनुकरण के योग्य । विप्लव=क्रान्ति ।

भावार्थ :—कारायण—तुम पहले तो पुरुष को स्वार्थी कहती हो और फिर यह कहती हो कि गौतम ने स्त्रियों को सन्यासिनी बनने की आज्ञा दी है । तो स्त्री-पुरुष की यह समानता और स्त्रियों के लिए परिव्राजिका होने का अनुशासन बनाने वाला भी तो मनुष्य ही है । महात्मा बुद्ध में स्वार्थ नहीं है, वे परोपकार की मूर्ति हैं, और इसीलिये उन्होंने नर-नारी की समानता की प्रतिष्ठा की है । किन्तु समाज में न तो स्वार्थी पुरुषों की ही कमी है और न ही स्वार्थी स्त्रियों की । पुरुषों में भी बुराइयां हैं और स्त्रियों में भी । यदि पुरुष नारी की आजादी को कुचलता है तो स्त्रियाँ भी तों ऐसी होती हैं जो पुरुषों के प्रेम को ठुकराती हैं या उसके साथ विश्वासघात करती हैं । फिर केवल पुरुषों पर ही दोष क्यों लगाती हो ? मनुष्य मन की जितनी भावनाओं को सदाचार के अनुसार ढाल कर प्रदर्शित जरता है, वे ही कर्त्तव्य मान ली जाती हैं । मैं तुम से प्रार्थना करता हू कि तुम स्वार्थी मनुष्यों के समान सदाचार की उपेक्षा मत करो और एक तूफान का रूप मत धारण करो । अपनी प्रत्येक

इच्छा की पूर्ति में तुम्हें सदाचार का ध्यान रखना चाहिये ।

इस पर शक्तिमती कारायण से ही अपना कर्त्तव्य पूछती है । वह उत्तर देता है—

कारायण—संसार भर के सभी काम सबके लिए नहीं हैं । कर्मों में भी विभाग है और कर्म करने वालों में भी । सूर्य भी प्रकाश फैलाता है और चन्द्रमा भी । किन्तु सूरज अपना काम आग में जलता हुआ करता है और चांद उसी प्रकाश को शीतलता से फैलाता है । उन दोनों के कामों में अदला-बदली नहीं की जा सकती । इसी प्रकार पुरुष और नारी दोनों का उद्देश्य है मानव जीवन को उन्नत करना । पुरुष इस कार्य को उग्रता और पौरुष के साथ करता है और नारी शीतलता और स्नेह के साथ । पुरुष का स्वभाव स्त्री को नहीं दिया जा सकता । और स्त्री का स्वभाव पुरुष को नहीं दिया जा सकता । मनुष्य कठिन साधना करके अपनी सामर्थ्य के अनुसार जीवन की लड़ाई में आगे बढ़ता हुआ प्रकृति पर अधिकार करता है, उसे जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार ढालता है । प्रकृति का अधिकारी बनने के पश्चात् भी वह प्रेम की आधीनता में रहना चाहता है । प्रेम के शासन में रहना ही उसके जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य है और वहीं पहुँचकर उसे सन्तोष और सुख की प्राप्ति होती । और वह कैसी दिव्य शक्ति है जिसके स्नेह के शासन में वह रहना चाहता है ? वह नारी है प्रेम, से और दया की साक्षात् प्रतिमा है । धीरज और अभय के वरदान देने वाले दिव्य हाथ के आश्रय के समान आकर्षक है । वह मनुष्य समाज की भावनाओं को परिचालित एवं उत्तेजित करने वाली कुंजी है । वह प्रकृति के समान सारे विश्व पर अकेले अधिकार कर उस पर शासन करने वाली है । ऐसी नारी के सत्य-प्रेम के बंधन में पड़कर ही विश्वविजयी सम्राट को शान्ति और सुख प्राप्त होता है । हे देवी ! तुम अपने उस असीम अधिकार को छोड़कर अपनी क्रमजोरी को प्रकट कर इस बेकार के परिश्रम में क्यों लगी हुई हो ? तुम्हारा राज्य तो बड़ा व्यापक है । तुम मनुष्य मात्र के अधिकारी को भी वश में रखने की शक्ति रखती हो । और पुरुष में हमें कठोरता मिलती है और नारी में हमें कोमलता के दर्शन होते हैं । पुरुष में भयंकरता है; किंतु नारी में करुणा है और करुणा

में ही हृदय का उच्चतम विकास होता है। हृदय की दिव्यतम विभूति है करुणा, जिसके सहारे मनुष्य का धर्म और सत्य ठहरे हुए हैं। यदि करुणा का लोप हो जाए तो सारे संसार में अधर्म और अशान्ति फैल जाए। नारी करुणा की प्रतीक है। इसीलिए प्रकृति ने उस करुणा को रमणी का आकर्षक और मधुर रूप प्रदान किया है। स्त्री के शरीर की बनावट और उसका स्वभाव भी करुणा के अनुरूप ही है। तुम अपनी शक्तियों का बुरा प्रयोग मत करो। भयंकरता का अनुकरण नहीं करना चाहिए। जिस दिन नारी समाज क्रूरता को स्वीकार कर लेगा, जिस दिन संसार से करुणा का लोप हो जाएगा, उसी रोज सारे सदाचारों में क्रान्ति होगी। वर्तमान नैतिक मूल्य छिन्न-भिन्न हो जाएँगे। फिर संसार की परिस्थितियाँ कितनी विषम होंगी इसका तो अनुमान भी नहीं लगा सकता।

पृ० १२६

पदच्युत = पद से हटाकर। दम्भ-मात्र = केवल पाखण्ड। लोलुप = इच्छाओं में जकड़ा हुआ। नर-पिशाच = मनुष्य के रूप में राक्षस। सती-सुलभ = जो सती नारी को प्राप्त है। कृत्रिमता = नकलीपन, पाखण्ड। हठात् = बलपूर्वक। मन्त्रणा = सलाह। प्रतिकूल = खिलाफ। मातृभाव = माता का भाव, मामता। बर्बरता का उद्रेक = जंगलीपन का उबाल। पाशव-वृत्ति = जानवरों की वृत्ति।

पृ० १२७

“चन्द्र

मत रक्खो।”

शब्दार्थ—उष्ण = गर्म। द्वन्द्व = जोड़ा। विलक्षण = विचित्र। अभिनेता = पात्र। क्रूरकर्मा = कठोर कर्म करने वाले। करुणाप्लुत = करुणा से भरना। अनन्तर = पश्चात्। वंचित = रहित।

भावार्थ—संसार की मनोहरता का कारण यही है कि इसमें सर्वत्र जोड़े दिखाई देते हैं। यहाँ चाँद और सूरज का, शीतलता और गर्मी का क्षोभ और करुणा का, कृपा और प्रेम के जोड़े हैं। स्त्री और पुरुष भी संसार के विचित्र नाटक के ही पात्र हैं। जिस प्रकार प्रकृति में अनेक जोड़े हैं उसी प्रकार नर और नारी का भी जोड़ा है। जिस प्रकार चन्द्रमा सूर्य को, शीतलता गर्मी को, करुणा क्रोध को और प्रेम घृणा को शांत करते हैं, उसी प्रकार स्त्री का कर्तव्य

भी है कि वह जानवरों सी जंगली भावनाओं वाले एवं कठोर कर्म करने वाले मनुष्यों को शान्त करें और उन्हें करुणालु बना दें। कठिन साधना के पश्चात् मनुष्य को जिस शिक्षा की आवश्यकता है, उस प्रेम, शीतलता, सहनशीलता और सदाचार को वे स्त्रियों से ही प्राप्त कर सकते हैं। यदि वे स्त्रियों से प्रेम आदि की शिक्षा नहीं लेते तो वे हिंस्र पशुओं के समान बहादुर भले ही हो जाएं, कभी मनुष्य नहीं बन सकते। पुरुष को मनुष्यता सिखाने वाली है नारी। हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम पुरुष को गिरने से बचाएं। व्यर्थ ही पुरुष की समानता और उससे आजादी के लिए संघर्ष छेड़कर हमें अपने इस अधिकार को—पुरुष को शिक्षा देने के अधिकार को—खो नहीं देना चाहिए। चलो तुम आज अपने पति से किए गए अपराधों की माफी माँगो। सुना है अजात और वाजिरा का विवाह होने वाला है तुम भी इस उत्सव को मनाकर आनन्दित हो जाओ।

शिरोधार्य=सिर पर है, स्वीकार है। वैतालिक=भाट। अनुगामी=पीछे चलने वाला।

पृ० १२८

अनुकम्पा=कृपा। पतितपावनी=पापियों को पवित्र करने वाली। परित्यक्ता=त्यागी हुई। विवाद=झगड़ा। कृत्य=कर्म। पश्चात्ताप=शोक।

पृ० १२९

निष्फल = बेकार। कृतज्ञ=अहसानमन्द। अवलम्बन=सहारा। विपन्न = दुखी।

पृ० १३०

व्यवस्था=कानून। त्याज्य=त्यागा हुआ। संकीर्ण=क्षुद्र। अन्धविश्वास=बुरा विश्वास, रूढ़ि। सुयोग्य = समर्थ। कुण्ठित=निर्बल, बेकार। अतिक्रमण = उल्लंघन। सर्व सम्पन्न = सभी वस्तुओं का अधिकारी।

पृ० १३२

विस्तृत करो=फैलाओ विप्लवों=क्रान्तियों। युत=गिरना।

पृ० १३३

शोचनीय = दर्द भरा। ग्राह = मगर। अमोघ = दिव्य।

पृ० १३४

स्निग्ध=प्रेम भरा । आकर्षित करना=खींचना । विलक्षण=विचित्र ।
युद्ध विग्रह=लड़ाई-भगड़ा ।

पृ० १३५

आम्रकानन=आमों का वन । नियति=भाग्य । गणिका=वेश्या । मनो-
नीत=मन को स्वीकार । विषमता=भयंकरता । संयत=वश में । सुख-लिप्सा =
सुख का मोह । स्त्री-सुलभ=स्त्री में प्राप्त । स्निग्धता=माधुर्य, प्रेम । संकोच-
दायिनी=संकोच उत्पन्न करने वाली । अवशिष्ट=बाकी ।

स्वजन

जाय कोई ।^१

शब्दार्थ :—स्वजन = सम्बन्धी । सनेह=प्रेम । उजला=स्वच्छ । चपल=
चंचल । अखर गया=बुरा लगा । विटप कंटीले=कॉटेदार वृक्ष, पाप-कर्म ।

भावार्थ :—अब तो सारे संसार में कोई भी अपना सम्बन्धी दिखाई
नहीं देता और न ही मन को कोई बात आकर्षित ही करती है । इतनी कष्ट
दशा है कि अब कुछ भी अच्छा नहीं लगता मैं अकेली पड़ी हुई रो रही
हूँ । कोई इस दुख में सान्त्वना देने वाला भी नहीं है । प्रेम के दिन बीत
गए हैं । अब तो विपत्तियों के दिन हैं । न तो अब जवानी का नशा रहा है
और न ही वासना की गर्मी रही है । न सुख की नींद आती है, न आनन्दो-
त्सव होते हैं और न ही अब सुन्दर सेज बिछाती हूँ । इस चंचल मन की कोई
भी इच्छा पूर्ण नहीं हुई और पहले जो झूठा अभिमान मुझ में भरा था अब
वही विपत्तियाँ गिरा रहा है । मैं अनन्त विन्ता की चिता में जलती रही हूँ ।
और कंटीले वृक्षों के समान पाप-कर्म किए थे जिनके दुख से अब रो रही हूँ ।
जिसे मैं अनन्त सुख समझी हुई थी वह वेदना बन गया । और अब मैंने
समझा कि मैं हमेशा शून्य में ही रहती रही । वायु का सहारा लेकर न तो
कभी कोई पता बताने के लिये वापिस ही आया है और न ही कोई जाता है ।
एकबार का गया हुआ पवन, फिर लौटकर नहीं आता । और फिर वह जाता
भी कहाँ है ? सभी कुछ तो शून्य है ।

विशेष—अन्तिम दो पंक्तियों का अर्थ स्पष्ट नहीं है ।

इस प्यासे

पदार्पण किया ।

शब्दार्थ—तृष्णा = प्यास । अमृत-स्रोत = अमृत का भरना । परिवर्त्तित= बदली । मरु-देश = रेगिस्तान । पदार्पण करना=आना ।

भावार्थ—इस प्यासे हृदय की प्यास मिटाने के लिए स्वयं अमृत के भरने ने अपनी धारा का रुख बदल दिया है । भगवान बुद्ध का मेरे पास आना ऐसा ही है जैसे अमृत का भरना किसी प्यासे के पास आ जाए । इस हृदय के रेगिस्तान में अमृत के भरने ने आकर उसे तृप्त कर दिया है । मागधी का धर्म-शून्य हृदय रेगिस्तान के समान है और महात्मा बुद्ध के दर्शन अमृत के भरने के समान ।

विश्व-खला=भ्रम, उलझन । अवज्ञा=अप्रमान ।

“क्षणिक

सकती हैं ।”

शब्दार्थ—क्षणिक=नाशवान । कौतुक = खेल । हेम=सोना । अग्रसर हो= बढ़ो । सहस्र = हजार । अन्तर = हृदय । विकसित होना=खिलना । पर दुःख कातरता=दूसरे के दुख से दुखी होना । उद्योग=प्रयत्न । अट्टहास=जोर की हँसी । परिणत होना = बदल जाना ।

भावार्थ—हे देवी ! यह जो कुछ तुम्हारे साथ घटित हुआ यह तो नाशवान संसार का एक खेल भर है । इन विपत्तियों को मेल लेने के उपरान्त तुम आग में तपे हुए सोने के समान पवित्र हो गई हो । तुम स्वयं पावन हो चुकी हो । अब तुम्हें संसारभर के सुख के लिए प्रयत्न करना चाहिए । इस संसार में अनगिनत दुखी प्राणी हैं । उन्हें हमारी सेवा की आवश्यकता है । तुम इस दुख के सागर में कूद पड़ो—दुख में डूबे हुए प्राणियों का उद्धार करने के लिए । यदि तुमने एक भी रोते हुए मनुष्य को हँसा दिया तो तुम्हारे मन में हजारों स्वर्गों का सुख एक साथ लहरा उठेगा । स्वर्ग कहीं अन्यत्र नहीं है । एक बार जब तुम परोपकार के आनन्द की अनुभूति कर लोगी फिर तो तुम्हें दूसरों के दुख में उनसे सहानुभूति करने और उनकी रक्षा के प्रयत्न में ही आनन्द आने लगेगा । संसार भर के साथ तुम्हारी मित्रता हो जायगी । तुम्हें सारा संसार अपना कुटुम्ब दिखाई देने लगेगा । उठो ! प्रयत्न

करो !! आहें भरते हुए असंख्य व्यक्ति तुम्हारी सेवा से खिलखिला कर हँसने लगेंगे ।

विकार = भाव ।

पृ० १३६

भ्रांत=गलत, अज्ञान का । सहोदर = सगे । क्षम्य = क्षमा करने के योग्य ।

पृ० १४०

धात्री = धाय ।

पृ० १४१

“चल

पास ।”

शब्दार्थ--चल = चंचल । बसंत-बाला=बसंत रूपी बालिका । घातक=चोट करने वाली । मलयानिल = मलय-पवन । दिनकर=सूर्य । मधुकर=भँवरा । सन्धि=सुलह । आवरण = पर्दा । अवयव=अङ्ग । शृङ्गार रहे=सजा रहे । वृन्त=जचाफल । निरीह = असहाय । मर्माहत = हृदय पर चोट खाकर । कुसुमाकर = कामदेव । नव पल्लव=नई कोंपल । सृजना=बनना, खिलना । बात=वायु । अवशेष=बचे हुए भाग ।

भावार्थ--जब सूर्य अस्त होता है तो बसन्त रूपी बालिका के चंचल आँचल से नशीली सुगन्धि में लदी हुई मलय-पवन की लहरें आती हैं । बालिकाएँ सुगन्धित दुपट्टा धारण करती हैं और जब पवन उन्हें छूता है तो उसमें भी सुगन्धि भर जाती है । कवि मलयानिल की सुगन्धि को बसन्त रूपी बालिका के दुपट्टे से चुराई हुई कल्पित करता है । फूलों से लदी वनस्पतियाँ ही वस्त्र का आंचल है । भँवरे से सलाह करके और क्षितिज के उस पार उषा रूपी नदी के किनारों पर घूमकर, इस मलयपवन ने फूलों का लोभ देकर वृक्षों के पत्ते का रस चूस लिया । प्रातःकाल वायु क्षितिज के उस पार से आती हुई प्रतीत होती है । पवन लताओं में फूल खिला देता है और मानो फूलों का लोभ देकर ही उसके पत्तों का रस पी लेता है । वे पत्ते फूलों को पर्दे के समान ढके हुए, डाली पर लगे हुए पवन ने पत्तों को आशा में फँसाकर अपने गले से लगा लिया । तब वे पत्ते रोकने पर भी नहीं रुके । पवन ने अपने भोक्तों से झकझोड़ दिया । फिर वे पत्ते कुम्हलाकर सूख गए, रस

के चुक जाने पर ऐंठ गए और फिर वे बेचारे कामदेव के भालों से चोट खाकर कच्चे फलों से अलग होकर गिर गए । लोग कहते हैं कि पुराने पत्तों के गिरने पर ही नई कोंपलें खिलेंगी किन्तु कोंपलों का खिलना बेकार है जब वायु ने निष्ठुरता से पहले पत्तों का बधकर दिया है । अब कौन उन पहले पत्तों और हँसते हुए फूलों को देख सकता है जब कि वे अतीत से भी दूर मृत्यु के गर्भ में विलीन हो गए हैं । पत्तों की प्रत्येक नस में पवन की इस निष्ठुरता की कहानी लिखी हुई है और राजा अपनी साँस से कहता है कि तू भी अब आह बनकर उनके बच्चे हूँ भागों के पास घूमेगी ।

विशेष--प्रकृति के चित्रण के साथ-साथ बिम्बसार की मानसिक अवस्था का भी सफल चित्रण हुआ है । पवन फूलों और पत्तों को सुखाकर गिरा देता है, काल व्यक्तियों को उठाकर पटक देता है । पृ० १४१-१४२

“सन्ध्या

आवेगी ।”

शब्दार्थ—समीर=पवन । उद्विग्न=आकुल, दुखी । निश्वास=साँस । निश्चल=स्थिर, शान्त । रहस्य=पहेली । भैरव-हुँकार=भयंकर गर्जन । अभिषेक=तिलक । उन्माद=पागलपन । निरचेष्टता=स्थिरता । दुरभिलाषाएं=बुरी अभिलाषाएं । आलोचित करना=चमकाना । निर्मल ज्योतिः=पवित्र प्रकाश । मेधुर=आकर्षक । सदृश=समान । सद्वृत्तियाँ=सुन्दर भावनाएं । उद्वेगजनक = क्रोध को उत्पन्न करने वाला । अन्तःकरण=हृदय । व्यग्र=आकुल । विनम्र = झुकी हुई । किसलय=कोंपल । भुरमुट्ट=समूह । सुरभित=सुगन्धित । थाले= लता के आस पास का गढ़वा । भीषण=भयंकर । चीत्कार=क्रन्दन । अस्तित्व= सत्ता । अनस्तित्व=शून्य । ग्रह-पिण्डों=नक्षत्रों । गति=दशा । निर्लज्ज = बेशर्मा ।

भावार्थ—थका हुआ व्यक्ति जब काम से छुट्टी पाता है तो ठण्डी साँस लेता है और उसकी जान में जान आती है । सन्ध्या के समय शीतल वायु चल रही है । ऐसा प्रतीत होता है मानो दिन भर का थका हुआ संसार ठण्डी साँस लेकर थकावट दूर कर रहा है । इसमें प्रकृति भी बिल्कुल शान्त और स्थिर मूर्ति के समान है । किन्तु कभी-कभी सुन्दर भोंकों से वृद्धों की पंक्ति हिल जाती हैं । मनुष्य का हृदय भी एक पहेली है । कभी जिस पर क्रोधित

होकर भयंकर गर्जन करता है, उसे बुरी तरह डाँटता-फटकारता है, फिर उसी पर प्रेम का तिलक लगाने के लिए भी तैयार हो जाता है। यह पागलपन नहीं तो और क्या है ? क्या मनुष्य इस पागल संसार से अलग होकर कभी शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता ? क्या वह इस सांसारिक माया-मोह से ऊपर नहीं उठ सकता ? मनुष्य की कितनी बुरी दशा है किन्तु फिर भी वह बिजली के समान ही अनेक बुरी इच्छाएँ अपने हृदय में जगाता है। जिस प्रकार बिजली एक क्षण में चमक जाती है और उसमें ज्वाला होती है उसी प्रकार मनुष्य भी एक पल में ही अनेक इच्छाएँ कर लेता है जो उसे भीतर ही भीतर जलाया करती हैं। हे मानव ! क्या तुझे पावन प्रकाश वाले तारों की किरणों के समान मधुर वृत्तियों का विकास अच्छा नहीं लगता ? तू क्यों अपने मन में अच्छी भावनाएँ नहीं जगाता जो अपने प्रभाव में तारों की ज्योति के समान निर्मल और स्वच्छ हैं। तू क्यों तीव्र भावुकता और क्षुब्ध करने वाले हृदय को लिए हुए आकुल हो रहा है ? यदि मैं राजा न होकर किसी झुकी हुई लता के सुकुमार कोंपलों के झुण्ड में लगा हुआ एक अध-खिला फूल होता और मुझ पर इस पागल संसार की नजर न पड़ती तथा मैं वायु के किसी झोंके को सुगन्धित करके धीरे से नीचे गिर पड़ता तो संसार में इतना भयंकर उत्पात न होता। यदि मैं अपने हृदय की चंचलता को दबापाता और शान्तिमय जीवन व्यतीत करता तो इतना लड़ाई-भगड़ा नहीं होता। मेरे लिए ही वासवी ने काशी के राज्य का राजस्व प्राप्त करने की चेष्टा की जिसके फलस्वरूप युद्ध हुए। यदि मैं राजा न होता और संसार की आँखों से ओझल एक फूल बनकर खिलता, तथा पवन को सुगन्धि देकर विलीन हो जाता तो कितना अच्छा होता ? मैं अपनी सत्ता को शून्य में मिलाकर कितना सुखी होता। हे भगवान् ! इस चेतन मनुष्य की दशा तो इन अनेक चक्रर काटते हुए नक्षत्रों से भी बुरी है क्योंकि नक्षत्र तो जड़ हैं इसलिए ठोकरें खाते फिरते हैं किन्तु मनुष्य चेतन होकर भी लुढ़कता फिरता है। इतना ही नहीं, अपमानित होने पर भी वह बेशर्मा समाज से अलग नहीं होना चाहता है। कैसा आश्चर्य है ? बड़े दुख का अवसर है। बिम्बसार अकेला सोचते-सोचते ऊब उठता है और सोचता है कि वासवी भी तो नहीं है। पता नहीं कब

तक आएगी ?

पृ० १४३

प्रस्तुत है=हाजिर है । अबाध्य=जो बाध्य या विवश न किया जा सके ।
जो अधिकार से बाहर हो । उद्दंडता=अस्वइपना । कूट-चातुरी=धोकेबाजी ।
दम्भ = अहंकार । प्रकोप = क्रोध, आधिक्य ।

पृ० १४४

यन्त्रणा=पीड़ा । गर्त्त=खाई । उबारिये=रक्षा कीजिए । मातृत्व-पद=माता
का पद । धात्री = धाय । राज-महिषी=राजमाता । गौरव=महानता । विदित=
मालूम । उपलब्ध=अवसर पर ।

पृ० १४५

आलोक=प्रकाश ।
